सनोवर की छाँह

❁

विष्णु शर्मा

कि ता ब म ह ल

इ ला हा बा द

१

रात के चेहरे पर जो नक़ाब था, उसे शमशेर ने एक बार उठाया और चीख़ पड़ा।

तब तक शमशेर अँधेरे का आदी नहीं हुआ था—उसे आदत थी चाँद की रेशमी किरणों की, तारों के शरबती तरानों की और ज़िन्दगी के सब से बड़े भ्रम—सुख की ! और उसे आदत थी पीठ पर रखे हुए हाथ की—जो पुचकार कर आगे बढ़ाता है।

लेकिन अन्धेरे ने निगल लिया उसको जो उसका बाप था और छः साल की उम्र में वह अनाथ हो गया।

२

हाँ ! छः वर्ष की अवस्था में शमशेर अनाथ हो गया था—बिल्कुल अनाथ तो नहीं क्योंकि उसकी माँ जीवित थी लेकिन बाप का साया सर से उठ गया था। बेबस माँ अपने नादान बच्चे के साथ अपने देवर के यहाँ रहने के लिए चली गई थी।

उसे याद था कि वह अपनी माँ से सबेरे से बहुत अधीरता से कुछ खाने को माँग रहा था और उसकी माँ बेचारी कुछ न कुछ कह कर टाल देती थी उसे। शमशेर को बहुत भूख लगी थी। वह अनमना-सा कमरे में आया। गिलास में दूध रक्खा था। उसने बहुत दिनों से दूध नहीं पिया था—फिर उसे भूख भी तो बहुत लगी थी। वह दबे पाँव गिलास के पास तक गया। दूध का गिलास उसके हाथों में आधे से अधिक ख़ाली हो चुका था जब उसकी चाची अपने लड़के को लेकर कमरे में आई। चाची हक्की-बक्की रह गई—"इसकी यह मजाल—बड़ा

चला है दूध पीने वाला—बाप जायदाद छोड़ गए हैं न कि लाड़ला दूध-मक्खन पिए-खाए।" चाची का मुँह ग़ुस्से से लाल हो रहा था—एक हाथ गिलास पर मारा, झनझना कर गिलास ज़मीन पर गिरा और दूसरा हाथ शमशेर के मासूम गालों पर। दर्द से वह चिल्ला पड़ा और सिसकता हुआ माँ के आँचल में मुँह छिपा कर चला गया कमरे से।

"माँ! चाची ने मुझे मारा क्यों?" शमशेर ने पूछा।

"तूने मुन्नू का दूध जो पी लिया था!" माँ ने आह दबाते हुए अपने बच्चे को समझाने की कोशिश की।

"तो माँ! मुझे दूध क्यों नहीं मिला? मुझे भी तो बड़ी भूख लगी थी—माँ!"

माँ ने अपने लाल को छाती से चिपका लिया और फूटकर रो पड़ी। वह शमशेर को उत्तर देती भी तो क्या! शमशेर क्योंकर दुनिया की रीत समझ पाता।

लेकिन समय ने शमशेर को उत्तर दे दिया। वह धीरे-धीरे बड़ा हो रहा था। यूँ उस अवस्था तक प्यार-दुलार में पले हुए समाज के लाड़लों को कुछ भी देखने-समझने की आवश्यकता नहीं पड़ती, लेकिन बेरहम ठोकरों ने शमशेर की चेतना को वक्त से बहुत पहले ही जगा दिया था। लेकिन उसकी आँखें सुनहरे ख़्वाब देखने के लिए नहीं खुली थीं—आदमी के पतन का, स्वार्थ का, नफ़रत का स्वाँग देखने के लिए खुली थीं। जो कुछ उसने देखा था वह उसके कोमल हृदय पर आघात करता गया—चोट पर चोट लगती ही गई; क्योंकि दुनिया अपनी रीत से बाज़ न आई। उसकी माँ घर में नौकरानी-सी थी—सारा काम उस बेचारी के कन्धों पर था। सूरज उगने से सोते वक्त तक काम—काम—काम! उसके बदले में माँ और बेटे को रोटी मिल जाती थी और शमशेर की पढ़ाई भी हो जाती थी। जब शमशेर बड़ा हुआ तो उसके ज़िम्मे भी घर का कुछ काम लगा दिया गया। वह

अपनी माँ पर इतना बोझ पड़ते देख कर तड़प उठता था। एक दिन वह अपने आप को न सम्हाल सका—दिल में उबलता हुआ तूफ़ान टूट पड़ा।

"माँ! यह सब अब नहीं चल सकता—मैं नहीं बर्दाश्त कर सकता कि यह जानवर तुम्हें और सताएँ। मैं ही इस सब का कारण हूँ—मेरी वजह से तुम सह रही हो यह सब—मैं ऐसी पढ़ाई नहीं चाहता—माँ—चलो यहाँ से चलें। मैं मेहनत-मज़दूरी कुछ भी कर लूँगा।"

"नहीं बेटा! यह मत सोच! ऐसा करने में तो हम हार जाएँगे। अभी तुम कमज़ोर हो बेटा, ज़िन्दगी के तूफ़ान बहुत बेरहम हैं। अगर तुमने अभी सिर उठाया तो तुम गिर पड़ोगे। यही तो यह लोग चाहते हैं कि परेशान होकर तुम ऐसा कुछ कर बैठो जिससे तुम्हारी हानि हो जाय। जो भी हो तुम अपने आपको पहले मज़बूत बना लो, उसके बाद...."। और साल भर बाद शमशेर दुनिया में बिल्कुल ही अकेला रह गया। दुःख होता क्यों उसे? उस जैसों के लिए तो मौत एक नशा था जिसके मतवालेपन में जिन्दगी की परेशानियाँ काफ़ी देर के लिए डूब जाती हैं। मौत से डर और नशे से नफ़रत तो उनको होती है जिनके लिए ज़िन्दगी में कोई सुख है और जो दूसरों की तकलीफ़ों की तरफ़ से मुँह मोड़ सकते हैं। माँ ने मौत की शराब पी ली थी—उसके नशे में उसे सुख होगा। अकेलापन—यह तो उन्हें अखरता है जिन्हें किसी के साथ या सहारे की आशा हो—शमशेर के लिए तो यह केवल एक कमज़ोरी है जिसका लाभ समाज फ़ौरन उठाने में चूकेगा नहीं। और जिसे समाज तिरस्कार से अपने ही ऊपर जिन्दा रहने के लिए विवश कर देता है, वह उनसे अगर क्षमा की भीख नहीं माँगता तो इसमें उसका क्या दोष? वह बाहर न देख कर अपनी आत्मा में झाँकता है और वह उसमें समाज के लगाए हुए ज़ख्मों का प्रतिबिम्ब देखता है। उसका ध्यान फिर कोई दूसरी चीज़ नहीं बटाती—वह अपने ही अन्दर ज़िन्दा रहने के लिए विवश हो जाता है। जो कुछ भी वह

अपनी आत्मा के शीशे में देख पाता है उससे उसके दिल में नफ़रत फूट पड़ती है।

उसी साल शमशेर इंट्रैंस भी पास कर चुका था। माँ के मर जाने के बाद घर के अत्याचार और बढ़ गए थे। बात-बात पर ताने, धमकियाँ, ग़ुस्सा। वह समझे थे कि यह अनाथ पत्थर की एक प्रतिमा है जिसके जी भर के ठोकर लगाओ और जिसके मुँह से एक आह भी न निकले। क्योंकि भावनाओं पर केवल उन्हीं का अधिकार है जो समाज को प्रिय हैं—उनका नहीं जिन्हें समाज लावारिस क़रार दे चुका है। लेकिन अगर वह पत्थर हैं तो भी उनके पास दिल है और दिल ऐसा जो ठोकर के जवाब में ठोकर मार सकता है।

शमशेर ने भी ठोकर मार दी।

लेकिन माँ का आदेश अभी ख़त्म नहीं हुआ था। उसे आगे भी पढ़ना था।

* * *

लेकिन कैसे !!! जून की तपती हुई धूप। सड़कों के भी तो छाले पड़ जाते हैं जब कोलतार पिघलता है। पटरी पर—जहाँ बस नाम को छाँह थी—शमशेर पड़ा सो रहा था—सो क्या रहा था—बेहोश पड़ा था भूख और गर्मी से। जहाँ वह सो रहा था उसके सामने एक ज़ीना था। ज़ीनें से एक साइकिल के उतरने की खड़खड़ाहट हुई और थोड़ी देर में एक पच्चीस-छब्बीस साल के सज्जन धोती-कमीज़ पहने, आँख पर मोटी 'लेन्स' का चश्मा लगाए उतरती हुई साइकिल पर कठिनाई से क़ाबू करने की कोशिश करते हुए लड़खड़ाते हुए उतरे। साइकिल तो क्या—उनसे तो कुछ भी नहीं सम्हल सकता था—और फिर ज़िन्दगी ! लेकिन जीवन के भी तो स्तर होते हैं और वह भी जीवित थे।

ख़ैर ! वह साइकिल कमबख़्त उनसे न सँभली और सोते हुए शमशेर के ठोकर लगी।

"क्यों जी—क्या तुम लोग ठोकर बगैर चल ही नहीं सकते ? अन्धे हो कि मुझे सोते से जगा दिया"—शमशेर तड़प कर उठा—उसकी आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थीं।

"नाराज़ क्यों होते हो भाई—मैंने जानकर...." एक तो विद्रोही साइकिल और फिर यह आग-सा नौजवान !

"जानकर तो तुम कोई काम कभी करते ही नहीं। तुम्हारे जानने या न जानने से तो कोई अन्तर नहीं पड़ता न ? मैं सो जो रहा था...."

"त····त····तुम सो रहे थे ! कहाँ ? यहाँ ?? बाप रे !" साइकिल ग़श खा कर गिर पड़ी।

शमशेर को बहुत ज़ोर से हँसी आ गई—वह ठहाके मार कर हँस पड़ा। मोटे शीशों के पीछे से झाँकती हुई आँखें उसकी तरफ़ चकराई हुई सी देख रही थीं।

"क्यों-घबड़ा गए। मौत और नींद इन्तज़ार नहीं करती है गुदगुदी सेज का। नींद आ गई तो बस आ गई। आदमी तुम भले मालूम होते हो !" हँसी के बीच में शमशेर बोला।

और भला आदमी लज्जित हो गया।

"अच्छा देखो—यह तुमने जो ठोकर मारी है न—इसका हर्जाना दिये बिना—नहीं जाने दूँगा—अ···डरो मत—ज़्यादा नहीं बस एक गिलास ठंडा पानी—प्यास लगी है।" अपने सूखे हुए होठों पर जीभ फेरते हुए, शमशेर बोला।

"ज़रूर, ज़रूर" वह भला आदमी कुछ ऐसा प्रसन्न हो गया जैसे पानी माँगने में शमशेर ने उस पर कोई भारी अहसान किया हो। "मेरे साथ ऊपर तक चल सकोगे ?"

कंधे उचकाते हुए शमशेर ने कहा—"अच्छा यह भी—ख़ैर चलो !"

साइकिल सड़क पर छोड़ी नहीं जा सकती थी। वह सज्जन उसे ऊपर चढ़ाने का असफल प्रयत्न करने लगे।

"अरे हटो यार ! तुम्हें तो ठोकर मारने के सिवा कुछ भी नहीं

आता।" और यह कहते हुए शमशेर ने उसकी साइकिल पकड़ कर बड़ी आसानी ने चढ़ानी शुरू कर दी।

साइकिल की खड़खड़ाहट सुन कर श्रीमती 'सज्जन' (दीनदयाल) किसी कमरे से यह कहती हुई निकलीं, "अरे लौट भी आए—अभी तो गए थे—क्या कुछ......" वाक्य अधूरा रह गया।

श्रीमती दीन दयाल ने दीनदयाल की तरफ़ देखा—दीनदयाल ने शमशेर की तरफ़—सबने सबकी तरफ़ देखा लेकिन हुआ कुछ नहीं। गुत्थी सुलझाई शमशेर ने।

"आपकी तारीफ़ ?"

"यह....वह....अ...."

"अच्छा यह 'वह' हैं", शमशेर ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया।

और जब सब सबको जान गए तो दीनदयाल जी को चैन आया और शमशेर से बोले—"अच्छा भाई बैठो, मैं अभी आया !" यह कहकर श्री और श्रीमती दीनदयाल दस मिनट के लिए अन्तरध्यान हो गए। जब वह लौटे तो श्रीमान के हाथ में एक गिलास था जिसके बाहर ठंड की बूँदें थीं और श्रीमती के हाथ में एक तश्तरी थी जिसमें मावे की गुझिया थीं, गुलाबजामन थे, समोसे थे, दालमोट थी और बेसन के बारीक सेव।

शमशेर के सामने वह चीज़ें रख दी गईं—दीनदयाल की आँखों में विनम्रता थी—और श्रीमती दीनदयाल की आँखों में कौतूहल ! वह देख रहीं थीं सोलह-सत्रह साल के इस लड़के को—उसके बिखरे हुए बालों को—चौड़े माथे को—बड़ी-बड़ी आँखों को जिनमें दर्द भी था और उपहास की झलक भी—उसकी सुडौल नाक को जिसके नीचे उभरी हुई मसों पर पसीने की चमकीली बूँदें थीं—उसकी फटी हुई सफ़ेद कमीज़ को जो सफ़ेद से ज़्यादा काली थी—उसके पुराने नीले ज़ीन के नेकर को जिसमें से उसकी भरी-भरी जाँघें और पैर निकले हुए थे।

शमशेर की आँखों में न तो कौतूहल था—न झिझक और

न विनम्रता—वह तन्मयता से अपने सामने रखा हुआ भोजन खा रहा था। क्योंकि शायद दिनों के बाद आज पहली बार....

इस अजीब से नौजवान को देखकर दीनदयाल को अपने हृदय में कुछ ऐसा लगा जिसे वह स्वयं आज ठीक तरह नहीं समझ पा रहे थे—सोये हुए सपने मचल उठे। उनका आदर्श था वह जिसे वह अपने सामने देख रहे थे—एक ऐसा पुरुष जो समय और परिस्थिति के ज्वार-भाटे को अपने मज़बूत सीने से रोक सकता है। लेकिन कल्पना और यथार्थ में जो अन्तर था वही दीनदयाल और शमशेर में था—किसी आदर्श को पूजना और अपनी धुन में पागल की तरह खो जाना यह दो बिल्कुल भिन्न-भिन्न बातें हैं। दीनदयाल परिस्थितियों से लड़ नहीं सका था—उसने बहुत पहले ही हार मान ली थी लेकिन उसके हृदय में सदैव एक इच्छा रही थी कि काश वह उन तमाम चीज़ों के ख़िलाफ़ लड़ सकता। और आज जब उसे एक ऐसा व्यक्ति दिखाई दिया जो कि ऐसा कुछ था जिसकी वह कभी कल्पना किया करता था तो उसे जलन नहीं हुई, उसके दिल में शमशेर के लिए श्रद्धा जाग उठी।

"तो आप वैसे रहते कहाँ हैं?" दीनदयाल ने पूछा।

"आसमान के नीचे और धरती के ऊपर—मेरा घर बहुत बड़ा है—हर जगह है और इसलिए कहीं भी नहीं।" शमशेर ने उत्तर दिया।

"तो आज से तुम हमारे साथ रहोगे?" दीनदयाल ने शमशेर से कहा। श्रीमती दीनदयाल भी (जिनका नाम कमला था) अपने पति से सहमत थीं।

"क्यों? आप मुझे क्यों रखेंगे अपने यहाँ?" शमशेर ने कहा और थोड़ी देर के लिए उसकी आँखों में मुस्कराहट की जगह शोले फूट पड़े।

दीनदयाल इस उत्तर से अवाक् रह गए। शमशेर ने बात जारी रखते हुए कहा—"आदमी में इतना अच्छा होने की शक्ति नहीं। तुम

लोग भले तो केवल इसलिए हो कि बुरा होने से तुम डरते हो—तुम्हारे दिलों में सन्देह है, घृणा है, अविश्वास है और तुम दूसरों का साथ केवल इसलिए देते हो कि उसमें तुम्हारा कोई अपना लाभ होता है। और मुझसे तुम्हारा या किसी और का कोई लाभ नहीं हो सकता।"

फिर दीनदयाल, कमला और शमशेर में काफ़ी बहस हुई जिसका फल यह निकला कि बहुत अनुरोध के बाद शमशेर इस बात पर तैयार हुआ कि वह उन लोगों के यहाँ उसी हालत में रहेगा कि बदले में वह उन लोगों का काफ़ी काम कर दिया करे।

इस तरह शमशेर को एक घर मिला—और उसने कालेज में भी नाम लिखा लिया। दिल में जब कोई चोट लगी हो और रह-रहकर टीस उठती हो तो इन्सान बस यह चाहता है कि अपने आप को काम में इतना डुबा दे कि उसकी थकान में वह सब कुछ भूल जाय। और शमशेर के युवक-हृदय पर चोटों की क्या कमी थी। सुबह से घर का काम-काज जो वह जानबूझ कर अपने सिर पर लाद लेता था—उसके बाद तपती हुई धूप में—बारिश में—कड़कड़ाते हुए जाड़े में कालिज जाना—शाम को फिर काम—फिर पढ़ाई और फिर नींद। हैवान की तरह काम करता था शमशेर।

३

कमला का विवाह हुए लगभग चार वर्ष हो चुके थे—कमला की अवस्था अब इक्कीस वर्ष की थी। जब उसकी शादी हुई थी तो वह सत्रह साल से भी कम थी। उस उम्र की जागी हुई नई-नई जवानी में बहुत से रंगीन सपने आए थे—सदैव ऐसा लगता था कि—बस—अब समय पर पड़े हुए झिलमिल पर्दे को हटाकर उसके सपनों का राजकुमार उसे अपने सफ़ेद घोड़े पर बैठाकर वहाँ ले जायगा जहाँ जवानी पर हमेशा बहार रहती है और प्रेम की कलियाँ हमेशा मुस्कराया करती हैं। लेकिन जो राजकुमार कमला को सचमुच लेने आया—वह सफ़ेद

घोड़े पर नहीं आया था—वह तो राजकुमार भी नहीं था। विवाह के बाद कमला जिस संसार में आई वह रंगीन मुस्कराहटों से लबालब नहीं थी—वह नीरस था, फीका था, उसमें न कोई जोश था, न उमंग—ज़िन्दगी की रफ़्तार न कभी तेज़ होती थी—न कभी धीमी। कमला उनमें से थी जो अपने हृदय के एकाकीपन में सपने रचा करते हैं और उन्हें ही यथार्थ समझ लेते हैं और जो सचमुच यथार्थ है, उसे वह कभी निबाह नहीं पाते।

कमला का विवाह हुए चार वर्ष हो गए थे लेकिन इतने समय में भी वह अपनी परिस्थितियों में ठीक तरह जम नहीं पाई थी। पत्नी के वास्तविक रूप के पीछे वह अब भी एक नवयौवना थी जिसे 'किसी' की प्रतीक्षा थी। उसके पति दीनदयाल बहुत भले आदमी थे, वह कमला को हर तरह प्रसन्न रखने का प्रयत्न करते थे। लेकिन दीनदयाल इस जीती-जागती दुनिया में रहनेवाले और इन्सानों की तरह एक आदमी थे—रोज़ी कमाते थे—हर तरह से एक साधारण खाते-पीते आदमी जिनको यूँ कोई कमी नहीं थी। यह सब होते हुए भी वह कमला के सपनों में बसनेवाले क्योंकर होते। और फिर वह उसके पति थे और प्रेम का स्वाँग रचाए हुए उन्हें जीवन भर साथ रहना था। कमला सोचती थी कि ऐसा उसके साथ कैसे हो सकेगा—वह घबड़ा जाएगी क्योंकि कमला उन व्यक्तियों में से थी जो हर दिन किसी नई बात की आशा में रहते हैं। लेकिन वास्तव में किसी के जीवन में कोई नई बात होती कब है?

और इस तरह कमला के दिल में जो अरमान न जाने कब से अँगड़ाई ले रहे थे—मचल रहे थे, वे बेचैन हो उठे। और कमला के थमे हुए जीवन में शमशेर आया था हवा के एक मज़बूत झोंके की तरह—सूरज की एक किरण की तरह। जितने आदमी कमला ने अब तक देखे थे वह सब एक तरह के थे लेकिन शमशेर जैसा इन्सान उसने पहली बार ही देखा था। उसमें ऐसा कुछ था जिसकी कल्पना वह अपने

सपनों में किया करती थी। इसलिए यह अनोखा इन्सान कमला को बहुत अच्छा लगा और धीरे-धीरे कमला उसके निकट पहुँचने लगी।

लेकिन यदि कमला में कोई ऐसा आकर्षण था तो उसे शमशेर समझ नहीं पाया। वह उसके रूप से, उसके यौवन से, उसके अरमानों भरे दिल से, उसकी जागी हुई आत्मा से बिल्कुल बेख़बर था। उसके समय का हर पल बुरी तरह काम में लगा हुआ था और उसके दिल में जहाँ प्यार जन्म लेता है वहाँ धधकते हुए अंगार थे। हाँ, यदि उस छोटे से परिवार में वह किसी के बारे में कभी कुछ सोचता था तो वह दीनदयाल थे। दीनदयाल उन गिने-चुने आदमियों में से थे—जो बिना कारण दूसरों की मदद कर सकते हैं—जिनका दिल किसी दूसरे के लिए भी पसीज सकता है। लेकिन कमला शमशेर के उतना ही निकट थी जितनी इस बड़ी दुनिया में बसने वाला कोई ग़ैर इन्सान।

कमला यह बात पूरी तरह नहीं समझती थी—समझना भी नहीं चाहती थी क्योंकि वह नारी थी और नारी इसमें अपनी हार समझती है। और हार मान लेना नारी के स्वभाव के बिल्कुल ख़िलाफ़ होता है। कमला ने जब शमशेर को अपनी तरफ़ से इतना उदासीन देखा तो वह उसकी तरफ़ थोड़ा और बढ़ी। और हुआ यह कि कमला के दिल में "प्रेम" ने मात्र "अच्छा लगने" की जगह ले ली। कमला को यह मानसिक प्रेम बहुत अच्छा और बहुत मीठा लगा—इसके आगे बढ़ते हुए तो उसके क़दम भी डगमगाते थे क्योंकि शारीरिक प्रेम पर जो बंधन समाज ने लगाए हैं उन्हें तोड़ने का साहस कम से कम हिन्दू समाज की विवाहिता नारी को हो भी कैसे? लेकिन केवल डर से तो इच्छा की तीव्रता कम नहीं हो जाती! और कमला जान कर भी यह नहीं जानना चाहती थी कि केवल मानसिक प्रेम का कोई अस्तित्व ही नहीं होता। क्योंकि मन को तो समाज ने बनाया है और इसलिए वह वही सोचता है जो समाज चाहता है कि वह सोचे, लेकिन शरीर पर—दिल में मचलती हुई उमंगों पर—नसों में दौड़ते हुए गर्म, ताज़े ख़ून

पर—समाज का कोई अधिकार नहीं। और जब कमला के शरीर की हर धड़कन ने उससे वह प्यार माँगा—जिससे वह स्वयं डरती थी—तो वह अपनी उस इच्छा का क़तई विरोध नहीं कर पाई—उसने बाँध टूट जाने दिया।

वासना के समन्दर में ज्वार आ गया—एक ज्वालामुखी सा फूट पड़ा—और शमशेर को लगा जैसे उसके चारों तरफ़ फैले हुए एक औरत की इच्छाओं के लहकते हुए शोले उसे जला कर राख कर देंगे। कमला की फैली हुई बाहें उसे कस लेने के लिए बुरी तरह बेताब हो रही थीं—उसका शरीर शमशेर के यौवन को चीख़-चीख़ कर पुकार रहा था। शमशेर ने अब तक औरत को केवल एक रूप में देखा था—एक माँ के रूप में। नारी के उस रूप में शमशेर को अथाह प्यार मिला था—प्यार तो उस औरत में भी था जो वह अब देख रहा था; लेकिन इन दो प्यारों में कितना बड़ा अन्तर था। एक में चाँद की—रुपहली शीतलता थी—शान्ति थी—ठंडक थी, मुलायमियत थी—जो कि उसके थके हुए मन को लोरियाँ गाकर सुला देती थीं और दूसरे में सूरज की तेज़ गरमी थी—एक ज़बर्दस्त बेचैनी—जो फूट पड़ती है—लपटें जो नज़दीक आकर सिर्फ़ जलाकर भस्म कर सकती हैं। उसकी माँ ने बदले में कुछ भी नहीं चाहा था और औरत का प्यार—उसके शरीर की हमेशा अतृप्त रहने वाली इच्छा आदमी से उतना सब ले लेती है—कमसे कम ले लेना तो अवश्य चाहती है कि बाद को उसके पास किसी को थोड़ा बहुत देने के लिए कुछ भी न रहे।

दीनदयाल को अपनी पत्नी के इस रूप का बिल्कुल ज्ञान नहीं था—किसी पति को अपनी पत्नी के वास्तविक रूप का ज्ञान नहीं हो पाता।

नारी के चरित्र की विशेषता यही तो है कि वह कब तक सफलता से अपने मुँह पर नक़ाब लगाये रहती है। जब तक जवानी रहती है तब तक आदमी के दिल में बचपन से पाला हुआ सुनहरा स्वप्न रहता

है—उमंगें रहती हैं—रंगीनियाँ रहती हैं—वासना रहती है और औरत के चेहरे पर अपनी मदहोश जवानी में खिलते हुए बेक़रार गुलाब—उसकी आँखों में वह शराब जिसके नशे में आदमी नहीं चाहता है मगर चाहता है—अपने शरीर की हर ख़ामोश धड़कन से चाहता है—और डूब जाता है उन गहराइयों में जहाँ से वह केवल तभी लौट पाता है जब उसका सब कुछ उन गहराइयों में ही डूब कर खो चुका होता है। औरत के शरीर की पुकार आदमी न सुनना चाहे पर वह सुनता है और उसके संगीत में इस सीमा तक खो जाता है कि वह तमाम उम्र उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं सुन पाता।

लेकिन शमशेर ने उस नशे को ठोकर मार दी—उस संगीत की तरफ़ से अपने कान बन्द कर लिए। उस रंगीन सुरूर ने लाख कोशिश की उसके दिमाग़ पर क़ाबू पाने की। पहले तो शमशेर को लगा कि वह अपने टूटे हुए दिल के फाटक इस मीठे नशे के बाढ़ के लिए खोल दे और जी भर के नहा ले उसकी मादकता में, लेकिन शमशेर के अन्दर कुछ विद्रोह कर उठा।

समय से पहले समझदारी उन लोगों में जाग उठती है जो ज़िन्दगी की तपती हुई घाटियों में बिना बचाव के चलते हैं। धधकते हुए अंगार उनके तलवों को जला तो अवश्य देते हैं लेकिन उसके बदले में उन्हें ऐसा कुछ भी दे देते हैं जो उसे पथभ्रष्ट होने से बचा लेता है और उसकी आँखों को ऐसी शक्ति दे देता है कि वह नक़ली दीवाल के पीछे खड़ी हुई असलियत को देख सके और पहचान सके। वह समझदारी शमशेर में भी आ चुकी थी क्योंकि ज़िन्दगी के निर्दय तूफ़ानों ने उसके थपेड़े मारे भी तो जी भर के थे।

और इसलिए शमशेर ने कमला के उस प्यार में—वासना के उस समन्दर में—उस औरत का प्रतिबिम्ब देखा जो स्वार्थ की प्रतिमा है—जो अपने मात्र एक वहम या दिमाग़ की एक छोटी सी हरकत पर चाहती है कि दुनिया का नक्शा बदल जाय और उसके रूप की

साधना में अनगिनत सिर झुक जायँ और फिर उठ न सकें। पति और पुत्र—केवल यही दो सम्बन्ध ऐसे हैं जो दुनिया की दृष्टि में औरत के लिए पवित्र हैं लेकिन वह भी केवल उस समय तक जब तक वह दोनों उसके सँकरे 'अहम्' या उसकी इच्छाओं के मार्ग में चट्टान नहीं बनते।

शमशेर ने यह सब उतनी साफ़ तरह तो अनुभव नहीं किया लेकिन कमला की चाह में वासना के अंगारे इतने साफ़ दिखाई दिये थे कि जलने के डर ने नहीं—वासना की अपवित्रता ने शमशेर को उस प्यार से बाग़ी बना दिया। और जब एक रात को कमला की फड़कती हुई बाहें उसे अपने में कस लेने के लिए बढ़ीं तो वह उसे धक्का दे कर उस मकान से बाहर चला गया—हमेशा के लिए।

तिनका भी सागर में डूब गया लेकिन डूबने वाला डूबा नहीं। वह खड़ा रहा उस रेगिस्तान में उस चट्टान की तरह जिसमें अकेले खड़े रहने की शक्ति तो ज़रूर होती है लेकिन जिसके पथरीले सीने में विशाल सूनापन होता है और जिसकी आँखें समय की गहराइयों में केवल अपनी ही परछाईं देखते-देखते पथरा जाती हैं। रात के वीराने में शमशेर की आँखों से एक आँसू निकल कर उसके चेहरे पर अपना रास्ता ढूँढ़ता हुआ ओंठों पर जा रुका। और जब शमशेर की जिह्वा ने उस आँसू को ढूँढ़ निकाला तो उसके सारे शरीर में उसकी कड़ुवा-हट भर गई।

इस कमज़ोर आँसू का पता संसार को नहीं लगा और रात की ठंडी हवाओं में वह सूख गया। यह भेद केवल शमशेर और उस रात के बीच ही रहा—

४

नदी के किनारे की बालू शरद की चाँदी-सी चाँदनी में भीगी हुई थी, जल में किसी सुन्दरी की रुपहली हँसी की-सी मृदुलता थी

और कम्पन था और नदी के सीने पर तैरता हुआ कुहासा। सारे माहौल में एक ठंडक थी—एक बेहोशी थी—एक ख़ामोशी थी और शमशेर के सारे शरीर पर एक थकान थी—ज़िन्दगी को पस्त कर देने वाली लम्बी भारी थकान। प्रकृति का यह रूप कितना मधुर था—कितनी शांति थी, कितना सूकून था—कुछ ऐसा था कि जी चाहता था कि बस उस चाँदनी के साथ—उस कोहरे के साथ—उस आकाश और उस हवा के साथ एक हो जाय—इस सब में हमेशा के लिए डूब जाय। आख़िर जिन्दगी क्यों—वह कशमकश और वह संघर्ष क्यों—वह लड़ाई क्यों कि जिससे शरीर पर हज़ार घाव हो जायँ—वह विद्रोह क्यों? ज़िन्दगी का वह तमाम स्वाँग जो उसके चारों तरफ़ हो रहा है—वह जाल जो व्यक्ति ने अपने चारों तरफ़ बिछा रखा है और जिसमें उलझ कर वह स्वयं गिर पड़ता और घायल हो जाता है—यह सब उसे बिल्कुल व्यर्थ लगा इस समय। उसके ज़ख्मी व्यक्तित्व के अन्दर दबी हुई किसी चीज़ ने उस समय यह चाहा कि सारी दुनिया एक स्वर्ग हो—उसमें मिठास हो—कि मुक्त इन्सान उगते हुए सूरज के सिन्दूरी उन्माद में नहा कर ज़िन्दगी के तराने गा सके—साँझ की सुनहरी घाटियों में से लौटते हुए पंछियों के गीत उसे थपका कर सुला दें और उसके सपनों में चाँद की वंशी की धुन हो और आसमान के नीले फ़र्श पर रात के घुँघरुओं की झंकार और थिरकन! जाड़े की बरसात के बादलों का एक बहुत बड़ा टुकड़ा आकाश पर छा गया। शमशेर ने एक लम्बी साँस छोड़ी। तिलस्म और जादू बहुत देर नहीं चलते—एक भ्रम पर ज़िन्दगी की चट्टान नहीं खड़ी की जा सकती। वह पूरा मधुर स्वप्न—उसकी कल्पना में समाया हुआ संसार और प्रकृति के रूप का वह चित्र—बादल की छोटी-सी काली परछाईं के नीचे दब कर जैसे कुम्हला गया। बस! उस स्वप्न में—उस जादू में—इतनी ही असलियत थी! सौन्दर्य संसार में रह नहीं सकता क्योंकि इन्सान अपना लाभ बनाने से अधिक मिटाने में समझता है। हाँ,

उन मिटे हुए खँडहरों पर कुछ आदमी अपनी ख़ुशियों का महल अवश्य खड़ा करते हैं और स्वार्थ की मंज़िल बनाने के सिलसिले में अत्याचार होते हैं—शोषण होता है—भूख, बेबसी, बेकारी और मौत यह सब होते हैं। तो क्या सिर झुका दिया जाय हैवान के सामने और उस ख़ूबसूरत ज़िन्दगी को, जो सिर्फ़ ज़िन्दा रहने के लिये है, मौत के हवाले कर दिया जाय। नहीं—कभी, कभी नहीं। सौन्दर्य कुछ नहीं—सपने कुछ नहीं—शांति कुछ नहीं क्योंकि इन सबका मतलब है मौत। दुनिया उसे मारना चाहती है—उसका दम घोटना चाहती है—उसे ढकेल देना चाहती है उस गड्ढे में जहाँ से वह कभी न उठ सके। वह हज़ार ख़ूबसूरत सपने—वह रंगीन तराने क़ुरबान हैं ज़िन्दगी के एक क्षण पर—कशमकश पर—संघर्ष पर—उन ज़ख्मों पर जो ज़िन्दगी की देन हैं।

इन्सान की इस नफ़रत की दुनिया में सौन्दर्य का स्वप्न असम्भव है।

शमशेर नदी के किनारे लेटा हुआ था। लेटे-लेटे ही झुँझलाहट में उसने ज़मीन पर ठोकर मारी—थोड़ी-सी बालू हवा में उड़कर रह गई और बस! उसके होठों पर एक कड़ुवी मुस्कराहट फैल गई। वह निकम्मा क्रोध और कर ही क्या सकता था—एक इन्सान सारे समाज और आधुनिक सभ्यता की पैशाचिक परम्परा के विरोध में खड़ा हो ही कैसे सकता था। लेकिन नहीं, शमशेर ने अपने दिल में भरी हुई तमाम नफ़रत की क़सम खा कर यह इरादा किया कि वह विद्रोह करेगा—अपनी अन्तिम साँस तक—ज़िन्दगी के अन्तिम क्षण तक। और शहर की तरफ़ उसके क़दम मुड़ गए।

रात का लगभग एक बजा था। ठंडी, भारी हवा चल रही थी और उसने शमशेर के गालों को गीलाकर दिया था। अपने सर, माथे और मुँह पर शमशेर को वह हवा बहुत अच्छी लगी लेकिन उसका शरीर उसके उन नाकाफ़ी कपड़ों में ठिठुर रहा था। रात बहुत बीत

चुकी थी लेकिन शहर के उस भाग में दो-तीन चायख़ाने अभी तक खुले हुए थे। बहुत नीचे पटे हुए थे वह और इसलिए बिजली के बल्ब की रोशनी और एक बड़ी-सी भट्टी से निकलते हुए भारी और बदबूदार धुएँ के पीछे बैठे हुए लोग अजीब भद्दे और बेतुके मालूम पड़ रहे थे। तीन चार रिक्शे दूकान के बाहर खड़े थे।

आसमान में ठिठुरे हुए सितारे और सहमी हुई सर्द हवा—दिमाग़ पर थकान और भारीपन और....और ख़ाली पेट अपनी विवशता में काफ़ी गहरे धँस गए। अन्तरात्मा की किसी प्रेरणा से शमशेर के हाथ उसका ख़ाली जेबों में तड़प कर पैसा ढूँढ़ने लगे। नाकामयाबी में उसकी मुट्ठियाँ भिंच गईं और पेट में भूख की दर्द की ऐंठन। गन्दे—चटख़े हुए शीशे के 'जार' में रक्खे हुए तीन दिन के बासी गुलाब-जामन उसे ऐसे लगे जैसे हीरे के बर्त्तन में अमृत रक्खा हो। और अमृत इन्सान की पागल ख्वाहिशों के दायरे के बाहर की चीज़ है।

शमशेर की आत्मा पीड़ा से कराह उठी और उसका शरीर शिथिल पड़ गया। उसका जी इतने ज़ोर से मिचला रहा था कि मालूम होता था कि जैसे शरीर के अंदर के सब अंग एक बड़े झटके में बाहर आ जाएँगे। सारा वातावरण एक बार ज़ोर से घूमा। और फिर अँधेरा छा गया।

५

नोकीली चमकदार मूँछें, रोबदार भरा हुआ चेहरा, लम्बा क़द और इस सब पर बढ़िया ख़ाकी वर्दी—सब-इन्सपैक्टर विजयसिंह अपने थाने में उस शान से बैठे थे कि बादशाह भी क्या अपने दरबार में बैठेगा। हवलदार, सिपाही, मुजरिम, मुजरिमों के रिश्तेदार, पान-सिगरेट—दरोग़ा साहब का दरबार कोई ऐसा-वैसा नहीं था। ।

"साले-सुअर के बच्चे चोरी-डकैती करते हैं, जाल-फ़रेब करते हैं और भाग-दौड़ करते-करते हम ख़ून पसीना एक कर देते हैं। फिर सरकार दो पैसे देती नहीं। और यह हरामज़ादे जिन्हें बचाओ—

छुड़ाओ वह समझते हैं कि जैसे हम इनके बाप के कर्ज़दार ही तो हैं—दरोग़ा साहब के इस भाषण से उनकी दिनचर्या शुरू होती थी। लोगों ने हाँ-में-हाँ मिलाई और बाईं हाथ की तरफ़ बैठे लाला के गोल-गोल मुँह पर एक चर्बीली मुस्कराहट फैल गई—"जो हुज़ूर का हुक्म हो! हम तो आपके ख़िदमतगार हैं।" दरोग़ा साहब के मुँह पर एक दैवी मुस्कराहट फैल गई—सौ का एक हरा नोट इधर से उधर गया और लाला का बेटा, जो कल रात शराब पिए हुए सड़क पर पड़ा पाया गया था और बन्द कर दिया गया था वह अपने बाप को सही सलामत लौटा दिया गया।

"और कोई मुजरिम है?" दरोग़ा को आशा थी कि वह दूसरा अपराधी भी पहले की तरह....

लेकिन दूसरा अपराधी....

एक बहुत तंग और अँधेरी सी कोठरी थी वह—न कोई खिड़की, न रोशनदान—बस एक किवाड़ जिसमें लोहे के मज़बूत सीख़चे लगे थे और वह भी बन्द! कमरे में धुँधलका था। बरामदे के ऊँचे-नीचे पत्थरों पर संतरी के जूतों की एक सार खट-खट की आवाज़ और एक गहरी ख़ामोशी। ठंडे सख़्त फ़र्श पर लेटा हुआ शमशेर कराह उठा। सिर पर दर्द के हथौड़े पड़ रहे थे—बेरहम दर्द जो उसके माथे पर एक साथ चोटें मारे जा रहा था—लगातार एक भयानक रफ़्तार। आँखों में जलन और पीड़ा और सारे शरीर पर मौत की सी शिथिलता। शमशेर ने कराह कर एक थमी-थमी सी, बहुत देर की रुकी हुई साँस छोड़ी। मालूम हुआ कि जैसे पतवार दलदल को हटा कर चलने की कोशिश कर रहे हैं।

दर्द अपनी हद से गुज़र चुका था—मौत की बाहों में शमशेर जिन्दा पड़ा था। उसके शरीर के अन्दर की आग बुझ रही थी—धीमी पड़ गई थी—लेकिन अब भी उसमें इतनी ताक़त थी कि उससे मौत के बर्फ़ीले पहाड़ के पहाड़ पिघल सकते थे। इसलिए वह ज़िन्दा था।

संतरी ने एक भारी चाभी एक भारी ताले के अन्दर डाली और उसे घुमाया—भारी सींखचेदार दरवाज़ा खुला। मोटे-मोटे बूट शमशेर की तरफ़ बढ़े :

"क्यों बे—रात की अभी तक उतरी नहीं।"

मोटे बूटों ने लकड़ी का एक डन्डा शमशेर की पसलियों में घुसेड़ दिया। तड़प कर शमशेर उठ पड़ा। अपनी कमज़ोरी में ठोकर खाकर वह गिर ज़रूर सकता था लेकिन ज़मीन पर पड़े हुए ठोकर खाना यह शमशेर नहीं सह सकता था। वह उन इन्सानों में था जो ख़ुद नहीं बदलते, जो ज़ुल्म से ढाले नहीं जा सकते बल्कि जिनके बाजुओं में इतनी ताक़त होती है कि वह परिस्थितियों को बदल दें। दबी हुई आग भड़क उठी—शमशेर उस हालत में भी बिल्कुल सतर खड़ा हो गया और वह भारी-भारी बूट वाला सिपाही उस कमज़ोर और चिड़चिड़े जानवर की तरह लगने लगा जिसे अपनी कमज़ोरी का अहसास है और इसी वजह से वह दूसरों को धमकाता है—उन्हें काटने की कोशिश करता है।

"चलो—चलो—दरोग़ा साहब के पास चलो", सिपाही ने बिगड़ कर कहा लेकिन उसके बिगड़ने में जान नहीं थी।

दरोग़ा के सामने जब दूसरा मुजरिम पहुँचा तो उस का पारा चढ़ गया। उसका चेहरा उस गिद्ध जैसा लगा जो लाश देख कर नीचे झपटकर आया हो लेकिन लाश के बजाय उसे सिर्फ़ हड्डी के टुकड़े मिलें।

शमशेर ने कोई बयान नहीं दिया। अदालत ने उसके उससे बाप का नाम पूछा—उसने यह बताने से भी इनकार कर दिया। अंधे क़ानून का चक्कर चला और शमशेर को एक महीने की सज़ा मिली।

मुजरिम के कठघरे में खड़ा हुआ ज़िन्दा शमशेर तीस दिन के लिए जिन्दा मौत के हवाले कर दिया गया। मैजिस्ट्रेट ने सन्तोष की साँस ली कि एक मुक़दमा और कम हुआ। जहाँ तक मैजिस्ट्रेट का सम्बन्ध था, न्याय किया जा चुका था और अभियोगी को उपयुक्त दंड भी मिल चुका था। शायद फ़ैसला अगर शमशेर को फाँसी देने का

होता तब भी न्याय का मालिक असलियत के भारी और बदसूरत पृष्ठों को पलटने का कष्ट न करता और उसके इस सन्तोष की थोड़ी पुष्टि और हो जाती कि न्याय किया जा चुका है और वह अपने मेहनत के इनाम का पूरा अधिकारी है।

शमशेर ने समाज के उस न्याय के खिलाफ़ अपनी जबान नहीं खोली। न तो शमशेर में ताक़त की कमी थी और न वह इस फ़ैसले को उचित मानता था फिर भी वह मौन रहा और उसने अपने बचाव के लिए कोई सफ़ाई नहीं पेश की। हर रोज़—हर जगह इंसान की आज़ादी पर हमले होते रहते हैं; उसकी प्रवृत्तियों को रूढ़ियों का बन्दी बना दिया जाता है लेकिन आदमी ज़बान नहीं खोलता क्योंकि पहले तो वह उस ग़ुलामी को दुनिया की उचित रीत मानता है और जब उसकी ज़िन्दगी की रंगीनियाँ धुँधली पड़ने लगती हैं और वह पर्दा फ़ाश हो जाता है जो उसकी आँखों के सामने लगा होता है तो उसका दिल चीत्कार कर उठता है लेकिन शर्म और कमज़ोरी के कारण वह अपना विरोध ज़बान तक नहीं ला पाता। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि आदमी को पूरा ज्ञान होता है, इस सब का—वह जानता है कि उसकी आत्मा ज़ंजीरों में जकड़ दी जायगी लेकिन फिर एक तरफ वह चैन और आराम देखता है और दूसरी तरफ़ विद्रोही को दिए जाने वाले दंड का कड़ापन और उसे एक ऐसा रास्ता चुनना पड़ता है जिस पर एक लम्बी हार है। और एक फीका और बेजान मगर सुरक्षित सुख।

शमशेर उन लोगों में था जिन पर ज़िन्दगी के राज़ पहले ही ज़ाहिर हो जाते हैं लेकिन जो ज़िन्दगी से इतना प्यार करते हैं कि उसका दम नहीं घोटना चाहते और जिन्हें अपने ऊपर इतना विश्वास है—अपनी इन्सानी ताक़त पर इतना गर्व है—कि न तो वह बासी रूढ़ियों के सामने सिर झुकाते हैं और न वह समाज के प्रतिकार से डरते हैं। फिर भी अपने ऊपर हुए अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ उठाने की भावना मात्र से उसके हृदय में ग्लानि भर गई। शायद शमशेर के जीवन का वह

दिन बीत चुका था जब वह अपने समाज सम्बन्धी विचारों को दोहराता क्योंकि अब तक उसके दिल में नफ़रत पूरी तरह घर कर चुकी थी और अब तो वह शायद यह भी नहीं चाहता था कि उस नफ़रत में कोई कमी हो या उस घृणा का स्थान प्रेम या सहानुभूति लें। उसके अन्दर जागे हुए उसके बलवान् अहम् को इस तरह पुष्टि मिलती थी। दुनिया से वह कोई भला नहीं चाहता था क्योंकि वह समझता था कि ऐसा होना असम्भव है।

ऐसा होता भी क्यों नहीं ! जब से शमशेर की माँ की मृत्यु हुई थी तब से अब तक हर आदमी ने उसे नुक़सान पहुँचाने की—उसे कुछ देने के स्थान पर उससे कुछ ले लेने की कोशिश की थी—उसे कहीं आश्रय नहीं मिला था—उसके थके हुए, दुखते हुए माथे पर किसी ने हाथ नहीं फेरा था, पेड़ के नीचे जब वह साया ढूंढ़ने के लिए पहुँचा था तो पेड़ की पत्तियाँ मुरझा कर सिकुड़ गईं थीं। उसकी ज्वालामुखी सी धधकती हुई जवानी पर किसी के प्रेम के ठंडे छींटे न, पड़े। नारी से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित होने पर अक्सर यह होता है कि आदमी का आग का-सा यौवन ठंडा हो जाता है और हवा की तरह आज़ाद उसका स्वभाव कैद हो जाता है गोरी बाहों में। लेकिन जवान शमशेर को अगर कुछ मिला था तो वह था क्रोध और घृणा और घी की-सी आहुति पाकर वह आग और ज़्यादा धधक उठी थी। किसी की गोरी बाहों ने उसके वेग को न रोका था और न किसी के बादलों जैसे गेसू उसके ऊपर छाँह बन कर मँडराए थे।

बस केवल एक बार बहुत पहले कमला ने उससे प्यार किया था—उसे ले लेना चाहा था अपनी वासना की गहराइयों में लेकिन उसके खिलाफ़ तो शमशेर की आत्मा ही विद्रोह कर उठी थी। उस समय न तो शमशेर का व्यक्तित्व आदमी के उस चरम अनुभव के लिए तैयार था और न कमला के उस प्यार में वह चीज़ थी जिसकी शमशेर को ज़रूरत थी। उस वासना में तो वह आग थी जो शमशेर की आग को

और प्रचंड कर देती और उसके सुलगते हुए व्यक्तित्व को जला कर राख कर देती। वासना के इस सोते का पानी तो प्यासे की तृष्णा और भी तीव्र कर देता और इन्द्रियों का हाहाकार अनंत कर देता। शमशेर को इसकी ज़रूरत नहीं थी—उसको तो ऐसे प्यार की आवश्यकता थी जो उसकी बरबाद ज़िन्दगी में बहार बनकर आए—उसके दिल के जलते हुए वीराने में चाँदनी बनकर समा जाय—उस महामिलन की जिसके पवित्र रस और सन्तोष में उसकी आत्मा जी भर कर नहा सके। लेकिन अवसर निकल गया और शमशेर को वह प्यार नहीं मिल सका।

६

बेड़ियों की झंकार गूँज उठी, काले पत्थर की उन मनहूस घाटियों में और अचानक गुम हो गयी कि जैसे किसी आततायी ने बलात्कार से पहले उसके मुँह में कपड़ा ठूँस दिया हो। वह आवाज़—वह गूँज—उसकी आत्मा का मौन अट्टहास था कि जिसका दम घोट दिया गया था—

तीस दिन और तीस रातों के लिए।

उन तीस दिन और तीस रातों के लिए ग़ुलाम इन्सान ने उसके स्वतन्त्र व्यक्तित्व को दफ़ना दिया था और उनकी आँखों में आँसू न आए थे—किसी का दिल न रोया था—किसी ने आह नहीं भरी थी—किसी ने यह न पूछा था कि "क्यों, चोट ज़्यादा तो नहीं लगी?" ऊँची मंज़िलों पर फ़ानूस झमक उठे थे, चाँद उसी शृंगार से निकला था—ज़िन्दगी और कुदरत का क्रम बदला नहीं था।

सितारे रिमझिमा कर फूट पड़ेंगे आसमान की चादर से, बाग़ में कलियाँ मुस्कराएँगी, प्रेमी अपनी प्रेयसी की ठोड़ी पर हाथ लगाकर प्यार के दो बोल बोलेगा—शायद तब भी सूरज दमक रहा था आदमी

की दुनिया पर लेकिन शमशेर के क़दमों की आहट काल-कोठरी में खो जाने के पहले तड़प रही थी।

सिपाही ने लोहे की एक भारी चाभी से एक 'सेल' का दरवाज़ा खोला और भारी खड़खड़ाहट से वह भारी दरवाज़े खुले, उस राक्षस की तरह जो अपना विकराल मुँह खोलता है नन्हें-नन्हें किलोलें करते हुए बच्चों को हड़प कर लेने के लिए। कोठरी के अन्धकार में—घुटन में—मौत की-सी खामोशी में ज़िन्दगी का देवता चला गया—मौन—

तीस दिन और तीन रातों के लिए--और दैत्य ने अपना मुँह दोबारा बन्द कर लिया।

समय होता है तो गति होती है, गति होती है तो जीवन होता है—ज़िन्दगी की कशमकश और उसका संघर्ष होता है। और इसी तरह क्योंकि आदमी क़दम बढ़ाता है—एक-एक पल में अपनी स्फूर्ति और जीवन भर देता है तो समय भी आगे बढ़ता है। मनुष्य की कार्य-शीलता से समय में गति आती है—समय तो केवल एक माप है इन्सान की प्रगति नापने का वैसे अपने में तो कुछ नहीं। समय चलता नहीं—वह गतिहीन है ठहरे हुए जल की तरह जिसमें लहरें उठती हैं इन्सान को स्वाभाविक गतिशीलता से। और इन्सान समझता है कि समय उसका देवता है—कि समय उसे काम करने पर मजबूर करता है—कि समय पर विजय पाना उसकी सबसे बड़ी जीत होगी। इन्सान की सभ्यता और उसका विज्ञान ज़माने-ज़माने से लड़ता चला आ रहा है समय से उस पर विजय पाने के लिए—एक अनन्त संघर्ष जिसका फल केवल यही रहा कि आदमी की ख्वाहिशें एक अथाह रेगिस्तान में जाकर कुछ इतनी भटक गई कि सदियों के परिश्रम के बाद भी वह कहाँ है—यह इन्सान नहीं समझ पा रहा है। और समय पर वह विजय नहीं पा सका क्योंकि समय अपने उस रूप में मन का केवल एक भ्रम है।

और इसलिए जब शमशेर एक पूरे लम्बे महीने के लिए अपनी जिन्दा क़ब्र में चला गया तो उसकी गति, उसकी उमंग भरी ज़िन्दगी,

उसकी नसों की कसमसाती हुई धड़कनें उससे जुदा हो गईं और वह लम्बा समय जिसे लोगों ने गतिशील बताया है, स्तम्भित होकर ठहर गया—शमशेर की क्रियाशीलता के आगे विराम बनकर खड़ा हो गया; सीमाओं ने ढँक लिया उसकी ज़िन्दगी के फड़फड़ाते हुए कौतूहल को।

जब आदमी काम करना बन्द कर देता है तो सोचने लगता है—निगाह दौड़ाता है अपने आगे-पीछे और चारों तरफ़। समन्दर की सतह पर हो सकता है कि लहरें बेचैन होकर न मचलें लेकिन दूर दृष्टि से ओझल गहराइयों में कितने भीषण तूफ़ान करवटें बदलते होंगे यह किसको मालूम और मनुष्य के चारों ओर उसे जकड़ लेने के लिए चाहे कितनी ही लौह शृंखलाएँ क्यों न हों लेकिन उसके वास्तविक व्यक्तित्व के अन्दर—उसके अन्तराल में—ज़बरदस्त अन्तर्द्वन्द्व चलता रहता है—विचार की लहरें एक भीषण कोलाहल के साथ टकराती हैं—वह संघर्ष होता है कि जैसे दो तूफ़ान आपस में टकरा गए हों।

शमशेर के अन्दर नफ़रत के जो गुबार थे वह अंगार बनकर फूट पड़े—घृणा का राग जो अब तक मौन था उसके व्यक्तित्व के अन्दर वह 'सेल' की उस ख़ामोशी में—उसके बिल्कुल सुनसान एकाकीपन में—अट्टहास के साथ गूँज उठा और उसके कान बहरे हो गए उस झंकार से। हज़ारों पैर उसके बेआसरा व्यक्तित्व को रौंदते हुए चले गए थे और उसके मुँह से निकली हुई आह जिन्दगी के कोलाहल में डूब कर ग़ायब हो गई थी।

कोठरी की काली चिपचिपी दीवालें—किसी विकराल साँप की पीठ जैसी मालूम होती थीं। और उस साँप की कल्पना करके—उस गंदगी और बदसूरती और चिपचिपाहट को देख कर शमशेर के दिल में वासना जाग उठी। उसके सामने नक्शा नाच उठा औरत के नग्न रूप का जो फन उठाए हुए नागिन की तरह अपने फन्दे में जकड़े हुए बेबस आदमी की ज़िन्दगी चूस लेती है। शमशेर के सामने उस वक्त औरत का यही रूप आया और हालाँकि इस गन्दगी के ख़िलाफ़ उसकी आत्मा

विद्रोह कर उठी लेकिन फिर भी डुबा देना चाहा शमशेर ने अपने आपको उस कीचड़ में। उसने औरत को पूरी तरह पा लेना चाहा और अपने उमड़ते हुए आवेग में उसकी इच्छा हुई कि वह पूरी तरह सराबोर हो जाय दलदल और गंदगी की बरसात में, बिल्कुल बच्चों की तरह जो देहातों में कच्ची सड़क पर बरसात में बनी हुई गन्दी खुण्यियों में हाथ पैर जी भर के छपछपाते हैं ताकि औरत से वह यह कह सके कि विलास की पाशविकता में वह उससे कम नहीं—नागिन की तरह वह उसकी ज़िन्दगी नहीं चूस पाएगी बल्कि आवारा भँवरे की तरह वह उसके रूप को—उसके मिठास को—उसकी जवानी को एक लम्बे कश के साथ चूसकर ख़त्म कर देगा।

लेकिन शायद यह सब एक ख़राब ख़्वाब था—एक लम्बी, काली, भयानक रात की लम्बी, काली भयानक यादगारें। सामने की दीवाल पर ऊपर के छोटे से रोशनदान में से छनती हुई सूरज की मदहोश, जवान, सुनहरी किरने थिरक रही थीं। मालूम होता था कि वीणा की एक झंकार ने ज़िन्दगी के अनगिनत रंगीन सपने जगा दिए हों! रंगीन सपने! ज़िन्दगी की घाटियों पर बहार का सतरंगी रूप बिखर गया—फूल मुस्करा उठे अपनी हर शोख़ और चंचल अदा में। वह झिलमिलाती हुई धूप एक तराना बनकर समा गई उस कोठरी की सीमाओं में और क़फ़स की दीवालें कुछ ऐसे ग़ायब हो गईं जैसे रात की रानी के गालों पर बिखरी हुई पिछली रात की ओस की बूँदे।

तूफ़ान के बाद कुछ अजीब तरह से स्थिर सी हो जाती है प्रकृति—कुछ निर्जीव सी-कुछ निश्चेत। सारा जोश, सारा उत्साह एक बार पूरे ज़ोर से उमड़ पड़ता है और फिर ज़िन्दगी की रफ़्तार बिल्कुल मद्धिम पड़ जाती है। ऐसा ही शमशेर के साथ हुआ। पहले क़ैद के अन्दर उठते हुए उसके विचारों का बवंडर, फिर आज़ादी का और उसके साथ ज़िन्दगी का सैलाब जो सब कुछ बहा कर ले गया और शमशेर कुछ ऐसा हो गया कि जैसे उसका व्यक्तित्व बिल्कुल खोखला-सा हो गया हो।

उसके अन्तर के ख़ाली ख़ालीपन में से सिर्फ़ एक धीमी सी आवाज़ आई—

"मैं शान्ति चाहता हूँ—
मैं ज़िन्दगी चाहता हूँ—
मैं प्यार चाहता हूँ—
मैं सुख और आराम चाहता हूँ!
संघर्ष, और मौत और नफ़रत नहीं!"

और इस आवाज़ का विरोध उसके व्यक्तित्व ने नहीं किया।

७

तूफ़ान के बाद जैसे समन्दर सहम कर ठहर जाता है और उसमें लहरें नहीं होतीं वैसे ही शमशेर था। जेल के दिनों में जैसे उसके दिल की गहराइयों में बलबलाती, उमड़ती हुई नफ़रत एक शिखर पर पहुँच गई थी और फिर वह अचानक उतनी ऊँचाई से एकदम गिर पड़ी थी और इन इतनी उठती-गिरती भावनाओं के ऊपर जेल से छूटने के बाद की आज़ादी मौत की-सी शांति की तरह उस सब पर फैल गई थी।

बहुत पहले शमशेर को दुनिया में बिल्कुल अकेला छोड़ दिया गया था और उस निस्सहाय अनाथ पर समाज के रीति-रिवाजों ने, परम्पराओं ने और रूढ़ियों ने आघात पर आघात मारे थे और मोम की शिला पर जलती हुई उँगलियों ने 'नफ़रत' और 'विद्रोह' खरोद दिए थे। उसने अपने चारों तरफ़ बसने वाले लोगों में केवल स्वार्थ, जलन और हिंसा देखी थी, उसने देखा था कि वह लोग दूसरे के दर्द से बिल्कुल बेख़बर हैं और उनके बनाए हुए क़ानून कठोर हैं—अमानुषिक हैं। इस सब के कारण वह उन सब से दूर दूर रहा और उसके एकाकीपन में नफ़रत का प्रेत बड़ा होता गया—बलवान होता गया।

हर इन्सान की ज़िन्दगी की बुनियाद किन्हीं मान्यताओं पर—कुछ आदर्शों पर होती है और उनसे ही उस व्यक्ति में ज़िन्दगी की ताक़त आती है। शमशेर के जीवन में उन मान्यताओं का कोई स्थान नहीं था क्योंकि उसने उन्हें झूठा पाया था—उसने देखा था कि वह आदर्श खोखले हैं। लेकिन हर इन्सान की ज़िन्दगी को बुनियाद की ज़रूरत तो होती ही है। क्योंकि शमशेर उन तमाम चीज़ों को पहले ही ठुकरा चुका था इसलिए उसके जीवन में उन सब का स्थान नफ़रत ने ले लिया था—नफ़रत उसके जीवन की आधार शिला बन गई थी। नफ़रत की ही कड़ुवी आग में उसका 'अहम्' पला और बड़ा हुआ था।

और अब....अब तो नफ़रत भी नहीं रही थी उसके दिल में—बस कुछ ऐसी कड़ुवाहट-सी रह गई थी जैसे उस बर्त्तन में बाक़ी रह जाती है जिसमें से ज़हर पिया जा चुका हो—कुछ ऐसा भारी ख़ुमार जो दिमाग़ पर रहता है सारी रात शराब और वासना में डूबे रहने के बाद। और कुछ नहीं—क़तई—कुछ नहीं। शमशेर कुछ ऐसा ढीला-सा पड़ गया था जैसे किसी ग़ुब्बारे में से हवा निकल गई हो। वह न ज़िन्दा था—न मरा हुआ—वह बस था। वह तूफ़ान की साँसों में बहती हुई पतझड़ की जड़ पत्ती की तरह था जिसके सब सहारे छिन चुके हैं; जो बेबस है, लाचार है क्योंकि उसमें अपना कुछ नहीं।

शमशेर में भी अपना कुछ नहीं था—उसका विद्रोह था जिसकी आग अपनी ही पैदा की हुई राख में बिल्कुल दब गई थी—बस वह बिल्कुल अकेला था उत्तरी ध्रुव के बर्फ़ीले रेगिस्तानों में कहीं भूल से उगी हुई जंगली फूल की एक ख़ामोश कली की तरह—उस औरत के दिल की तरह जिसमें अरमान नहीं होते—जिसके शरीर में वासना की लपक नहीं होती, जिसकी पथराई आँखें उड़ती हुई रेत में अपने शिकार के क़दमों को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते थक जाती हैं—जो सब कुछ खो चुकी होती है लेकिन फिर भी ज़िन्दा रहती है—न जाने क्यों ?

और जब दिल में ऐसा कुछ होता है तो इन्सान यह चाहता है कि

ख़ुदकुशी कर ले लेकिन कर नहीं सकता क्योंकि उसका शरीर उसके दिल की कमज़ोर आवाज़ का कहा नहीं मानता।

* * * *

सिपाही रामसिंह एक मामूली सिपाही था। नौ बजे सुबह से दस बजे रात तक वह चौराहे पर खड़ा-खड़ा अपने चारों तरफ़ गुज़रने वाली सवारियों को हाथ दिखाया करता था। उस ड्यूटी के बाद सिपाही इंसान बन जाता था और जवान रात को अपने सीने से सटा कर ज़िन्दगी के हज़ार रंगीन कुमकुमें रौशन कर देता था। आज से तीन साल पहले शमशेर से रामसिंह की जान पहिचान हुई थी।

जब उनकी जान पहिचान हुई थी उस समय शमशेर रामसिंह को केवल एक सिपाही समझता था जो शायद उन तमाम हज़ारों आदमियों की तरह है और उसे उन तमाम आदमियों से उसे नफ़रत थी। वह उन्हें हैवान समझता था। लेकिन रामसिंह से वह नफ़रत नहीं कर सका—उसकी हिम्मत नहीं हो सकी कि वह उसे हैवान माने। फिर भी शमशेर का डरा हुआ व्यक्तित्व असलियत मानने के लिए तैयार नहीं हुआ और वह इस दुविधा में ही रहा कि कैसे वह इस अनपढ़, मामूली सिपाही को इन्सान माने।

पर रामसिंह में कुछ ऐसा था जो उसके नफ़रत के दुर्ग पर आघात करता था—उसके अविश्वास के दरवाज़े पर एक मीठी-सी दस्तक देता था। और जब एक दिन वह अपने आप को न सम्हाल सका तो वह पूछ ही बैठा रामसिंह से—"राम भैया! तुम सिपाही हो —तुम बेकार नियमों का पूरा-पूरा पालन करते हो जो उन्होंने बनाए हैं जिन्हें उसका कोई हक़ नहीं। तुम एक लकड़ी के बुत की तरह हो—तुम हैवानों की बस्ती के बीच में रहते हो—रहते आए हो—रहते रहोगे पर ऐसा क्यों है कि मैं तुमसे चाहते हुए भी नफ़रत नहीं कर पाता, तुम्हें उन हैवानों की बिरादरी का सदस्य मान नहीं पाता? ऐसा क्यों है कि

तुम्हारी आत्मा में मेरी आत्मा को आकर्षित करने की शक्ति है ? ऐसा क्यों है कि हैवानों के गुलाम होकर भी तुम इन्सान हो ?"

रामसिंह मुस्करा दिया। "मुझसे क्यों पूँछ रहे हो बाबू—तुम पढ़े-लिखे आदमी हो। ख़ैर, क्या आज रात को तुम मेरे घर आ सकोगे—चम्पा गली में ?"

एक कौतूहल सा जाग उठा था शमशेर के दिल में। रामसिंह सिपाही था—एक मामूली सा सिपाही—लेकिन वह कुछ बड़ा अजीब सा था। उसने घर पर बुलाया था—क्यों ? मैंने तो उससे सवाल पूछा था—तो क्या जवाब उसके घर में है ? घर ! घर ! वह जो उसे कभी मिला नहीं—जहाँ कभी उसके बचपन के ख्वाब से दिनों में उसे उसकी माँ की ममता मिली थी लेकिन मिलते ही ग़ायब हो गई थी ठीक सपने की तरह ! घर—जिसमें उसने ज़हर देखा था; जिसने उसके प्यार के प्यासे दिल के सामने अपनी किवाड़ें बन्द कर ली थीं, जिसने उसे सड़कों पर फेंक दिया था—भूख और तकलीफ़ों के लिए, जिसने और जिसके अन्दर बसने वालों ने उसे वह कर दिया था जो वह अब है ! वह घर तो आदमी को हैवान बना सकता है। वह घर क्या जवाब देगा उसके प्रश्न का ? कहाँ तक रामसिंह के असली व्यक्तित्व का सम्बन्ध उसके उस घर से है !

ज्यों ज्यों वह रामसिंह के राज़ को जानने की कोशिश कर रहा था उतना ही वह अपने विचारों के बियाबानों में उलझता चला जा रहा था और उसी के साथ साथ उसके क़दम चम्पा गली की तरफ़ चले जा रहे थे।

एक मामूली सी गली थी—कहीं ऊँचे, कहीं नीचे पत्थर, कहीं कीचड़, कहीं गोबर—कहीं गन्दगी। पुरानी लकड़ी के एक खम्भे पर चुङ्गी की लालटेन लगी थी जिसके एक तरफ़ का शीशा आधा टूटा हुआ था और उसकी वजह से लैम्प की रोशनी गली की हवा में काँप रही थी और उस काँपती हुई लौ के प्रकाश में उस बदसूरत ज़मीन पर

शमशेर की अनगिनत छायाएँ पड़ रही थीं—लम्बी, चौड़ी, टेढ़ी तिरछी दानवी परछाइयाँ और शमशेर के क़दम अपने व्यक्तित्व के उन बहुत से प्रतिबिम्बों को रौंदते हुए बढ़े जा रहे थे।

एक तरफ़ एक गन्दे से सफ़ेद मकान के नीचे वाले हिस्से के बरामदे में एक छाया बैठी—अन्दर की कोठरी में रखे हुए दिए की मटियाली रोशनी छाया के चेहरे पर पड़ रही थी। लगता था कि जैसे कंकाल के मांसहीन चेहरे के गड्ढों में दिए की रोशनी पीड़ा से तिलमिला रही हो—उसकी आँखों के अन्धकार ने उस प्रकाश को धुँधला कर दिया हो। ऊपर से किसी ने 'सू सू' किया और हाथ से उसे बुलाने का सकेत किया।

वेश्याएँ ! शमशेर का जी मिचल उठा—उसे क़ै होने को हुई—उसके दिल में घृणा हुई इस माहोल को देख कर। नीचे वाली छाया ने गिड़गिड़ा कर भर्राई हुई आवाज़ में कहा—"आजा न ! आठ आने ही देते जाना।" शमशेर को लगा कि वह ग़श खा कर गिर पड़ेगा।

बस आठ आने—नारी का सतीत्व सिर्फ़ आठ आने में बिक रहा था—नारी का रूप, उसका शरीर, उसका यौवन उसकी आत्मा—यह सब आठ आने में। मानव की जननी उसकी इस सभ्य दुनिया में सिर्फ़ आठ आने में। औरत—ज़हरीली नागिन—जो आदमी को अपनी बासना में सड़ा कर हैवान बना देती है। बस अपना शरीर देकर वह उसका पुरुषत्व, उसकी इन्सानियत सब कुछ ख़रीद लेती है। लेकिन यह औरत—इस औरत के चेहरे पर तो वह बात नहीं थी—वह हिंसक मुस्कराहट नहीं थी; इसके चेहरे पर तो मौत की सी स्थिरता और ख़ामोशी थी। इससे उसका सब कुछ लिया जा चुका था—आदमी ने अपनी माँ को रंगीन कपड़े पहना कर छज्जे पर बैठा दिया था, वेश्या बनाकर और उसकी लाज को चाँदी के जूतों से रौंद दिया था। वह वैश्या थी या तमाम इन्सानियत की माँ जिसे भूख की धमकी दिखाकर

आदमी ने उसकी अस्मत ख़रीद ली थी मुट्ठी भर गेहूँ से। और यह औरत जो उसकी माँ भी हो सकती थी आज उसे अपना शरीर आठ आने में बेच रही थी। आठ आने में—ऐसे न जाने कितनी अठन्नियों के बूते पर न जाने कितने आदमी उस अभागी औरत के शरीर पर अपनी पैशाचिकता की मोहर लगाकर आगे बढ़ गए होंगे दुनिया में भगवान और भलाई का डङ्का पीटने के लिए। और मन्दिरों के पंडित और मसजिदों के मुल्ला ईश्वर और अल्लाह की दुहाई देकर यह कहते हैं कि यह नारी जाति की कलंक है—नरक के कीड़े हैं। लेकिन भगवान जिसे दुनिया संगमरमर और सोने के मन्दिरों में ढूँढ़ती है वह इन मटियाली गन्दी कोठरियों में रहता है जिसकी दीवालों से वासना की दुर्गन्ध आती है।

शमशेर का शरीर काँप उठा—उसे ऐसे समाज से क्या मिला हो—क्या शिकायत हो जो सीता और सावित्री को वैश्या बना सकता है—जो खेल सकता है उनकी लाज से होली और सभ्यता का ढोंग बनाई हुई नागिनों को पत्नी और माँ के रूप में पूजता है—प्यार करता है।

उस बदबूदार और चिपचिपे माहोल को चीर कर शमशेर के क़दम थोड़ा और आगे बढ़ गए, सड़क के दोनों तरफ़ मकानों की क़तारे थीं—ऊँचे-नीचे, मैले-कुचैले गन्दे घर जिसके अन्दर जलती हुई धुँधली लालटेनों की रोशनी में उनके अन्दर बसने वाले थके हारे इन्सान प्रेतात्माओं की तरह सिकुड़े बटरे बैठे थे। बाईं हाथ की तरफ़ एक-मंजिला सफ़ेद घर था—रामसिंह ने कहा था कि वही उसका घर है—वह घर जिसमें पुलिस का एक अदना सिपाही अपनी इन्सानियत का राज़ समेटे बैठा था। शमशेर के दिमाग़ में फिर से एक कौतूहल जाग उठा। अभी इस गली में वह कुछ ही मिनट चला होगा पर उस थोड़े से समय ने ही उसके अन्दर एक ज़बरदस्त हलचल पैदा कर दी थी। लोगों की पूरी-पूरी जिन्दगियाँ कट जाती हैं लेकिन वह उसे लम्बे समय

में भी जिन्दगी का मतलब वह नहीं समझ पाते। उनके लम्बे-चौड़े मिनटों, घंटों, दिनों में जिन्दगी नहीं होती—गुलामी होती है बासी परम्पराओं की—छिछलापन होता है और उनकी ज़िन्दगी के दिन उन्हें [illegible] मालूम [illegible] हैं और मौत जब आती है तो वह बौखला जाते हैं। आख़िरी समय में जब उनमें यह चेतना जागती है कि कितना समय बरबाद हो गया जिसमें वह कुछ देखते समझते तो देर में—बहुत देर में—उनमें मोह पैदा हो जाता है और उनकी तड़पती हुई आत्मा इस पार से उस पार पहुँच जाती है। लेकिन इस नयी दुनिया में बसने वाले लोग तो दीवाने हैं, उनका हर क्षण जैसे जिन्दगी का आख़िरी मिनट होता है और उसकी गहराई में वह अपनी इन्सानी हस्ती के पूरेपन से डूब जाते हैं—उनके लिए मौत कोई डर नहीं होता बल्कि एक शराब होती है जिसे वह हँसते-खेलते पी जाते हैं ताकि जिन्दगी का सूरूर क़ायम रहे।

शमशेर सोच रहा था यह सब—वह समझना चाहता था लेकिन समझ नहीं पा रहा था। रामसिंह का घर आ गया।

शमशेर ने रामसिंह को ऐसे कभी नहीं देखा था। उसने उसे एक सिपाही के ही रूप में देखा था और उसके उस रूप ने शमशेर को भुलावे में डाल दिया था और यह रामसिंह जो वह अब देख रहा था यह तो जैसे कोई दूसरा ही आदमी हो।

ज़मीन पर एक फटी हुई दरी का फ़र्श था—रामसिंह उस पर सिर्फ़ चारख़ाने का तहमद पहने पड़ा था। उसके सामने एक बोतल थी जिसमें नारंगी शराब रखी थी—बोतल आधी ख़ाली थी। दो तीन लड़कियाँ उसके आस-पास बैठी थीं—रामसिंह के चेहरे पर ज़िन्दगी की चमक थी।

शमशेर यह दृश्य देख कर दरवाज़े पर ही ठिठक गया। रामसिंह शमशेर को देख कर बोल उठा—"आओ न अन्दर शमशेर बाबू—हाँ—हाँ—आ जाओ। यह....यह चमेली है—यह बेला और यह....

यह है सुंदरिया। भाई माफ़ करना ज़रा।" रामसिंह ने थोड़ी सी नारंगी शराब मोटे काँच के गिलास में ढाली। "अरे भैया! मैं तो भूल ही गया। तुम्हारे लिए भी तो—अरी ओ सुन्दरिया कोई गिलास—कुल्हड़ तो ले आ।....क्यों, नहीं पिओगे—दुनिया बुरा कहेगी....तो फिर—नशा हो जायगा? ज़िन्दगी भी तो एक नशा है बाबू जिसे लोग पीते नहीं तो कितने उदास—उदास रहते हैं। वह कुछ नहीं समझते जिंदगी का और मैं—मैं जो शराब पीता हूँ—मैं उनसे ज्यादे समझता हूँ—क्यों है न बेला।"

और बेला बेचारी खिलखिला पड़ी—शमशेर चुप था। रामसिंह ने चमेली से कहा—"अरी तू क्या कर रही है चुड़ैल—नाचती क्यों नहीं? हमारे घर मेहमान आए हैं और तू पुतली की तरह बैठी है।"

पायल छमक उठी—दरिद्रों, बेबसों, भूखों और ग़रीबों के इस छोटे से संसार में जिनसे दुनिया ने सब कुछ छीन कर यह समझ लिया था कि वह पैसे और सांसारिक सुखों की कमी से मुरझा जाएँगे। मगर उन्हें केवल जलन और पीड़ा मिले जिन्होंने यह डाका डाला था; जिनके पास यह सब था पर कुछ नहीं। और यह जिन्दगी के दीवाने—यह मुरझाए नहीं खिल उठे। इन्हें दौलत की ज़रूरत नहीं थी—इन्हें महलों की दरकार नहीं थी; इनके अन्दर तो जीवन की ज्योति इतनी प्रबल थी कि वह वीरानों में भी बहार पैदा कर सकते थे अपनी मुस्करा-हटों से। दुनिया की रीति-रिवाजों को—उस नक़ली धर्म और सोने के भगवान यह नहीं मानते थे—इन्सानियत इनका धर्म था और इन्सान इनकी दुनिया का देवता।

शमशेर चकराया हुआ सा वह सब देख रहा था—वह हक्का-बक्का सा रह गया था इस कमरे में आकर। वह तो सोचे बैठा था कि रामसिंह एक मामूली सा सिपाही है जो लकड़ी के पुतले की तरह अपनी ड्यूटी अंजाम देता है। उसी आदमी में ज़िन्दगी का इतना ज़ोश है—

अल्हड़पन है—उमंग है—मतवालापन है—इसकी कल्पना शमशेर अपने ख्वाबों में भी नहीं कर सकता था।

पायल की झंकार जैसे यकायक शुरू हुई थी वैसे ही अचानक रुक भी गई। रामसिंह ने पास में रखा हुआ गिलास नाचने वाली को फेंक कर मारा—नर्तकी चिल्ला उठी—उसकी धोती पर नारंगी-शराब बिखर गई—गिलास झन्न से गिर कर टूट गया और तीनों औरतें कमरे से निकल कर भाग गईं।

"यह क्या किया राम भैया?" शमशेर ने कौतूहलपूर्ण स्वर में पूछा।

कुछ मिनटों तक रामसिंह फटी-फटी आँखों से उस दरवाज़े की तरफ़ देखता रहा जिसमें से तीन औरतें अभी-अभी भागकर जा चुकीं थीं—गिलास के उन टुकड़ों की तरफ़ देखा—शराब की बोतल की तरफ़ देखा जो अब तक ख़ाली हो चुकी थी और कमरे में घुटा हुआ वह पूरा माहोल जिसमें से जान एकाएक चली गई थी उन नाचने-वालियों के साथ—उस टूटे हुए गिलास के साथ—ख़ाली शराब की बोतल के साथ।

"कुछ नहीं शमशेर बाबू—थोड़ा-सा पागलपन-सा आ गया था दिमाग़ में जो अब खत्म हो गया—तुम्हें यहाँ देख कर मुझे याद आ गया कि मैं तो सिर्फ़ एक मामूली सिपाही हूँ और यह सब एक भ्रम है। लेकिन फिर समझ में आ भी गया—भ्रम ही तो ज़िन्दगी है, यथार्थ है और जिसे आप और हम असलियत समझ बैठे हैं वह मन का जाल है—कड़ुवा, फीका जाल! ख़ैर—इस क्षणिक आवेश के लिए क्षमा कीजिएगा।"

"लेकिन भ्रम पर ज़िन्दगी का महल क्यों रचा रहे हो रामसिंह—क्या यह पलायन नहीं है उस फीके जाल से? यह तो कायरता है और फिर यह भ्रम, तुम्हारा यह खूबसूरत सपना कब तक क़ायम रह सकेगा? हाँ—ज़िन्दगी की वह कड़ुवाहट—उस नक़ली ज़िन्दगी का जाल तो सदैव ही रहेगा। जीने का मतलब तो उस जाल को काटना है—उस

कड़ुवाहट को ख़त्म कर देना है—उससे मुँह छुपा कर सपनों में खो जाना नहीं।" शमशेर बोला।

रामसिंह मुस्करा दिया : "हो सकता है। आप तो पढ़े-लिखे हैं ठीक ही कहते हैं। लेकिन हम सपनों में मुँह क्यों न छिपाएँ—क्यों हम उस जाल को काटें—क्यों हम निज़ाम बदलने की कोशिश करें। आप शायद इसे कायरता और स्वार्थ कहेंगे—लेकिन हम कर ही क्या सकते हैं; हम से तो समाज ने सब कुछ छीन लिया है—हमें इतना मारा है कि हमारी रीढ़ टूट चुकी है—हम सतर खड़े हों भी कैसे विद्रोह करने के लिए। हम तो समाज के अपाहिज हैं, हम कुछ नहीं कर सकते—हमें अपनी इज़्ज़त, अपनी इन्सानियत बेचकर आधा पेट खाने को मिल पाता है। आपने इन तीनों लड़कियों को देखा था—बेला, चमेली, सुन्दरिया—ये तीनों वेश्या हैं, यह तीनों जवान हैं, ख़ूबसूरत हैं, भूखी हैं और ये तीनों वैश्याएँ इसलिए हैं कि ये औरतें नहीं रह सकतीं—अभी इनके पास जवानी है, ख़ूबसूरती है तो इन्हें खाने को मिल जाता है लेकिन अब से दो-तीन-पाँच साल के बाद ये कोने वाली सलीमा की तरह अपने उजड़े हुए रूप और बरबाद जवानी को लाचारी से गिड़गिड़ाकर आपको चार आने—आठ आने में बेचेंगी और आप उन्हें ख़रीदेंगे नहीं—उन पर थूकेंगे भी नहीं जहाँ अबसे कुछ पहले आपने अपने शरीर की ज़हरीली वासना उनके शरीर में उँड़ेली थी—रोटी के दो टुकड़े फेंक कर। नहीं बाबू आप हमारी बात नहीं समझेंगे—इस गली में और इस तरह की हर बस्ती में बसने वाली हर औरत वेश्या है, हर आदमी अपाहिज है।" रामसिंह ने अपनी नंगी कलाई से अपनी आँखें पोछ लीं।

शमशेर अवाक था। इस दुनिया में बसने वालों के दर्द की दास्तान ने उसके दिल को झकझोर डाला था—लेकिन फिर भी वह यह नहीं समझ पा रहा था कि कैसे वे अपने दीवानेपन से ग़म ग़लत कर लेते हैं—क्यों नहीं फूट पड़ते वे ज्वालामुखी की तरह।

किसी की जानदार हँसी कमरे के तने हुए वातावरण में फूट पड़ी। "अरे ओ रामू। अभी सिम्मो कह रही थी कि तुम्हारे यहाँ कोई शहर का बाबू आया है जो बड़ा मरा हुआ सा लगता है! कहाँ है वह?"

"ताजो! तू बड़ी बेहूदा है। कोई मेहमान के लिए ऐसे कहता है। शमशेर बाबू—इसे माफ़ कर देना, यह बड़ी नादान है लेकिन हम सब की जान है इसलिए इतने नाज़ हैं इसके। अच्छा बोल, लाई तू मेरा सामान।" रामसिंह अब तक अपनी भावनाओं पर क़ाबू पा चुका था—उस जैसे को तो भावनाओं को ज़ाहिर करना ही जुर्म था।

"हाय दैया! उस पैसे की तो मैं चाट खा गई।"

रामसिंह ने उसके बाल पकड़ कर खींच लिए। "हाय राम!"—ताजो मचल पड़ी।

ताजो—अजीब सी थी कुछ ताजो! ज़िन्दगी की देवी की तरह थी वह—उसके बाल रीठे की तरह काले-काले, रेशमी और घुँघराले थे—उसकी आँखों में आग थी—शरबत था—उसके जिस्म में वह ताक़त थी जो जवान धरती में होती है। उसके उरोज—बेक़रार जवानी अपने ऊपर क़ाबू नहीं कर पा रही थी और उभरी पड़ रही थी उस ग़रीब की काली झीनी चोली से और कभी—शायद बहुत जल्दी ज़िन्दगी की यह देवी कोने वाली सलीमा हो जायगी। शमशेर का चेहरा उस दर्द की पीड़ा से तिलमिला उठा।

"ऐ बाबू—तुम चुपचाप क्या बैठे हो—न हँसते हो, न बोलते हो। अजीब बुद्धू मालूम पड़ते हो! रामू—मैं ले जाऊँ इसे अपने साथ—पैसे-वैसे हैं इसके पास कुछ?"

रामसिंह ने एक घूंसा मारा ताजो की पीठ पर "भाग यहाँ से चुड़ैल कहीं की!" और हँसती हुई ताजो चली गई कमरे से।

"क्या लड़की है यह भी। हँसती हुई आती है—हँसती हुई चली जाती है—भगवान करे यह हँसती हुई ही 'उसके' घर चली जाय।" रामसिंह के चेहरे पर पिता के से स्नेह की दैवी चमक थी।

"यह ताजो कौन है राम भैया ?" शमशेर के दिमाग़ पर नशा छाया हुआ था—सुख का नहीं, दुख का ।

"ताजो—यूँ तो यह भी एक वेश्या है लेकिन हम बस्ती वाले इसे देवी मानते हैं—इसका रूप—इसकी जवानी—इसके अन्दर की नारी अनन्त है । हमारी कामना है कि यह यों ही हँसती-खेलती अपनी जवानी में मर जाय क्योंकि हमारे टूटे हुए दिल भी काँप उठते हैं—जब इसके दर्द की कल्पना करते हैं । अपने बुढ़ापे में यह कैसे भूख और शरीर का कोढ़ बर्दाश्त कर सकेगी ।" रामसिंह की आँखों में आँसू आ गए । शमशेर एकाएक उठ पड़ा और पागल की तरह तेज़ी से कमरे के बाहर चला गया । रामसिंह ने उसे रोका नहीं ।

८

जेल से छूटने के बाद शमशेर की जो मनोस्थिति थी उसका एक फल यही था कि वह एक बार शांति से जीवन में टिक कर दम लेना चाहता था—वह थोड़ा सा सुख—थोड़ा सा सन्तोष चाहता था । वह चाहता था कि उसका एक घर हो—कि उस घर में दीप जलें—कि उसके उस घर के अन्दर किसी की खूबसूरत हँसी ज़िन्दगी का तराना बन कर झूम उठे । और हालाँकि उसके दिल की गहरी तहों के अन्दर तड़पती हुई कोई चेतना यह जानती थी कि शायद ऐसा होना सम्भव नहीं फिर भी उसका शरीर—उसका दिल—उसका दिमाग़ इस सब की कामना करता था ।

इतनी बड़ी दुनिया में अगर कोई उसका अपना था तो केवल रामसिंह—एक वही था सिर्फ़ जिसे शमशेर इन्सानों की इतनी बड़ी दुनिया में इन्सान मानता था—इसीलिए शमशेर उसे देवता समझ कर उसका आदर भी करता था । रामसिंह के कंचन से व्यक्तित्व का भेद

जब शमशेर को मालूम पड़ा था तो वह हैरान रह गया था। जेल जाने के पूर्व रामसिंह से वह उसकी आख़िरी मुलाक़ात थी।

तीस-चालीस दिन के बाद शमशेर रामसिंह के पास गया। "वाह ! शमशेर बाबू ! आप उस दिन से तो कुछ ऐसे ग़ायब हुए कि नज़र ही नहीं आए। कहाँ रहे ? हमारी दुनिया पसन्द नहीं आई आपको !" रामसिंह शमशेर से बोला।

"बात यह नहीं भैया। तुम्हारी और तुम्हारी दुनिया वालों की मैं इज़्ज़त करता हूँ—तुम्हारे अपाहिजों को और तुम्हारी वेश्याओं को मैं देवता और देवी मानता हूँ। मैं....मैं ज़रा बीमार हो गया था !" शमशेर जिसने कभी झूठ नहीं बोला था ताज्जुब करने लगा कि आख़िर वह झूठ बोला क्यों ! लेकिन रामसिंह एक ऐसा व्यक्ति था जिससे शमशेर झूठ बोल नहीं सकता था। और जब रामसिंह को उसकी ग़ैरहाज़िरी के पीछे का सत्य मालूम पड़ा तो वह बोला :

"आपने हमें पराया माना, शमशेर बाबू—हमें पता भी न लगने दिया। आज की दुनिया में इन्सान—हर आदमी—अपने स्वार्थ में लीन है, बिल्कुल अकेला है। उसका दुख—उसका साथी न तो समझता है, न समझना चाहता है और वह अपनी मजबूरी में—अपनी पैदा की हुई मजबूरी में—उसकी यातना सहता है। लेकिन हम तो मजबूर नहीं—हम उस दुनिया के भी नहीं। हमारे पास है ही क्या जिसे हम स्वार्थ की कटीली चहारदीवारी के पीछे बन्द रखें—हमारे पास तो सिर्फ़ दिल की टीस है—आँसू हैं जिसे हम बटा सकते हैं और इस साझे को हम अपनी क़िस्मत समझते हैं। आपने हमारे साथ अन्याय किया।" रामसिंह का चेहरा उसके दिल में रोते हुए दुख से तमतमा रहा था।

शमशेर भी पिघल गया—शायद जीवन में पहली बार भावनाओं ने उसे विचलित किया था; शायद इसलिए कि वह घृणा की पराकाष्ठा तक पहुँच चुका था—एक बार और अब हालाँकि बहुत दबे-दबे—उसके दिल में ज़िन्दगी का नयापन फिर से हिलोरें लेने लगा

था। स्नेह और सहानुभूति के आलोक में सिपाही और समाज का बाग़ी गले लग गए।

रामसिंह को धीरे-धीरे उन बातों का पता लगा जो शमशेर के दिल में तब थीं। रामसिंह ने इरादा कर लिया था कि वह अपने 'शमशेर बाबू' का सारा प्रबन्ध ठीक कर देगा।

चम्पा गली से कुछ दूर रामसिंह की जान-पहचान के एक बाबू रहते थे—बाबू गिरजा दयाल—जो किसी दफ़्तर में हेड-क्लर्क थे। काफ़ी उम्र थी उनकी। उनके दो बच्चे थे—एक लड़का, शामू, जो आठवीं जमात में पढ़ता था और एक लड़की, मोहनी, जो उस वर्ष हाई स्कूल में बैठने वाली थी। बाबू गिरजा दयाल भले सज्जन व्यक्ति थे और रामसिंह को काफ़ी मानते थे। रामसिंह और बाबू गिरजा दयाल एक ही गाँव के थे और रामसिंह का बड़ा भाई श्यामसिंह बाबूजी का बचपन का साथी था। एक दिन रामसिंह ने बाबूजी से कहा कि वे शमशेर को दोनों बच्चों को पढ़ाने के लिए रख लें और इस तरह शम-शेर के लिए एक नया सिलसिला क़ायम हो गया। उस ज़माने में तीस रुपए महीना इतना काफ़ी जरूर था कि एक आदमी अपना पेट भर ले। शमशेर के जीवन में एक नया अध्याय शुरू हुआ।

शमशेर इस व्यवस्था से प्रसन्न था। वह इरादा कर चुका था कि जीवन को सुखी बनाएगा। और हालाँकि समाज से विद्रोह और नफ़-रत अब भी उसके दिमाग़ में बरसे हुए बादलों की तरह अवशेष थीं लेकिन उसने इरादा कर लिया था कि अब वह उस ओर कोई ध्यान नहीं देगा। माना कि उसके चारों तरफ़ का माहोल अभी बदला नहीं था—समाज के वे दोष उतने ही भयानक थे—शोषण और अत्याचार की परम्परा ठीक उसी तरह थी लेकिन उसके दिल की तन्हाइयों में नयी-नयी उमगी हुई ख़्वाहिश ने यह इरादा कर लिया था कि वह उस तरफ़ देखेगी ही नहीं—वह अपनी एक नयी दुनिया रचाएगी और उसके सुहाने संगीत में जी भर के डूब जाएगी। ज़िन्दगी का भटका हुआ

मुसाफिर एक बार फिर ज़िन्दगी के हसीन दायरे के अन्दर आ जाना चाहता था। उसने रामसिंह को ताजो को और उस तरह के और इन्सानों को देखा था; उसने देखा था कि उनकी ज़िन्दगी में कहीं रोशनी नहीं है—उन्हें ज़िन्दा रहने के लिए अपनी सबसे मूल्यवान वस्तुओं को .कुर्बान करना पड़ रहा है लेकिन ज़िन्दा रहने में इतना आकर्षण है—उसकी मुस्कराहटों में मदहोश जवानी की इतनी शराब है—उसके आँसुओं में दिल के इतने करीब की धड़कनें हैं कि आदमी बेचारा क्या करे—ज़िन्दा रहने के लिए—सही-सही मानों में ज़िन्दा रहने के लिए—कोई भी .कुर्बानी कम है।

जब एकाएक शमशेर रामसिंह के यहाँ से उठ कर चला आया था तो उसके दिल में एक ज़बरदस्त तूफान आया था। अब से कई साल पहले वह अनाथ हो चुका था और दुनिया के रहम के लिए उसे भिखारी बनना पड़ा था। उस रहम के बदले दुनियावालों ने उसकी नंगी पीठ पर कोड़े मारे थे और दर्द से वह कराह उठा था। उसने घृणा में दुनिया की तरफ़ से मुँह मोड़ लिया था और उसके दिल के अन्दर नफ़रत की ज्वाला धधक उठी थी। इंसान का व्यक्तित्व जब किन्हीं भीतरी या बाहरी कारणों से सिमट कर अपने ही अन्दर को सिकुड़ने लगता है तो 'अहम्' का जन्म होता है और वह 'अहम्' अपने ही सँकरेपन के अन्दर पल कर बड़ा होता रहता है। और जब ऐसा होता है तब व्यक्ति की ज़िन्दगी के समन्दर में एक टापू बन जाता है। हालाँकि इस सब में व्यक्ति का स्वयं कोई दोष नहीं होता फिर भी जीवन से सम्पर्क ख़त्म होने से उसके अन्दर एक ज़बरदस्त सुनसान हो जाता है जिसकी बर्फ़ सी आग में व्यक्ति स्वयं जलता रहता है।

रामसिंह और उसके दूसरे साथियों की ज़िन्दगी देख कर—उनके दर्द भरे आँसुओं और रंगीन मुस्कराहटों को देख कर—उनकी बेबसी और उनका मतवालापन देख कर शमशेर कुछ अजीब हो गया था। समन्दर में तूफ़ान आ गया था और वह टापू उन तूफ़ानी मौजों के

उभार में डूब गया था—ज़िन्दगी का सैलाब कुछ ऐसे जोर से आया था कि 'अहम्' की दीवाल उससे बिल्कुल ढह गयी थी।

उसके बाद समय की मजबूरियों ने शमशेर को जेल में डाल दिया था और क़ैद के उन लम्बे दिनों और लम्बी रातों में नफ़रत और कड़ुवाहट का एक भीषण ज्वार-भाटा एक बार फिर से आया था और गुजर गया था लेकिन इस ज्वार-भाटे के बावजूद वह चेतना शमशेर में क़ायम थी जो उसमें जेल जाने के पहले आयी थी और इसलिए जब वह आजाद हुआ तो उसने ज़िन्दगी कुछ नए इरादों के साथ शुरू की।

९

चम्पा गली में शमशेर रहने को आ गया क्योंकि रामसिंह का आग्रह था कि अब वह उसी के साथ रहे। अकेले में, रामसिंह को डर था, हो सकता है शमशेर के अन्दर जागे हुए ज़िन्दगी के नए सूरज के ऊपर कहीं बादल फिर न छा जायँ। रामसिंह शमशेर को बाबू गिरजा दयाल के यहाँ ले गया—उसे मिलवाकर सारी बात पक्की कर लेने के लिए। बाबूजी ज़्यादे उम्र के सुलझे हुए आदमी थे—उन्होंने अपने मोटे चश्मे के अन्दर से शमशेर को अच्छी तरह देखने-परखने की कोशिश की। उस लम्बे-चौड़े-ख़ूबसूरत मगर उदास नौजवान में बाबू जी की होशियार आँखों को कोई ऐसी चीज़ नज़र नहीं आई जिसे वह नामुनासिब समझते। जब सब बात तय हो गयी और शमशेर और रामसिंह चलने लगे तो बाबूजी ने रामसिंह को ज़रा रोका और एक तरफ़ बुलाकर कहा—"रामू। भाई एक बात है! तुम इन्हें (शमशेर बाबू को) अच्छी तरह जानते-बूझते हो न? नौजवान आदमी हैं और....और मोहनी बिटिया....यानी....मतलब यह है कि .. कि...." रामसिंह को दिल में एक बार क्रोध आया लेकिन मुस्करा कर बोला—"जैसा मैं आपके लिए, वैसे ही यह। आप चिन्ता न करें।" शमशेर

ने ठीक न समझा कि रामसिंह से वह यह पूछे कि अकेले में बाबूजी ने उससे क्या कहा था।

शमशेर ने शामू और मोहनी को पढ़ाना शुरू कर दिया। बाकी जो समय मिलता था उसमें वह स्वयं पढ़ता या बस्ती के और बच्चों को पास बैठा लेता था और उन्हें थोड़ा-बहुत पढ़ा देता था। शमशेर इन दिनों उस रोगी की तरह था जो लम्बी बीमारी के बाद स्वास्थोपार्जन कर रहा हो। ऐसा नहीं था कि उसे लाभ न हो रहा हो—ढर्रे की ज़िन्दगी, चिन्ताओं से मुक्ति, रामसिंह का स्नेह और छोटे-छोटे, बच्चों की मुस्कराहटें और....और ताजो!

ताजो शमशेर के दिमाग़ पर छाने लगी थी प्यार की चाँदनी बन कर। उसके दिल में एक ऐसे मधुर संगीत ने जन्म लिया था जिसे प्यार कहा जाता है। शमशेर ताजो को ज़िन्दगी की प्रतिमा मान कर उससे प्यार करता था। ताजो में बच्चों की-सी सरलता थी और यौवन का उन्माद; नारी का सहज स्नेह भी था और आदमी के अन्दर वासना की लहरों को जगा देने वाला शारीरिक आकर्षण भी। वह औरत थी—अपने सब गुणों से सम्पन्न एक नारी—जो ज़िन्दगी और यौवन और रूप की देवी थी।

एक रात शमशेर कमरे में बैठा पढ़ रहा था। कोई आठ या नौ का वक्त होगा। रामसिंह अभी ड्यूटी से लौटा नहीं था। छम-छम करती हुई ताजो कमरे में आई—शमशेर किताब पढ़ने में बहुत व्यस्त था। उसने ताजो की तरफ़ देखा भी नहीं। ताजो न जाने क्यों खीज गयी; उसने आलमारी में रक्खी हुई किताब शमशेर को फेंक कर मारी। शमशेर हड़बड़ा गया। निगाह उठा कर देखा तो ताजो खड़ी थी—दीवाल से टेक लगाए—उसके चेहरे पर एक अजीब-सी मुस्कराहट थी जो शमशेर ने कभी नहीं देखी थी—वह हाथ में कुछ सिक्के लिए थी जो वह बजा रही थी—उसकी चोली बेतरतीबी से बँधी थी, नीचे को आ गयी थी और उसके अन्दर से उसकी कसी हुई जवान छातियाँ

कुछ ज़्यादा उभरी हुई थीं। शमशेर का सारा जिस्म सिहर उठा—जैसे उसके अन्दर से बिजली लपक गयी हो। उसके उरोजों के उभार की नोकें अंगारों की तरह उसकी आँखों में—उसके दिमाग़ में घुसी जा रही थीं। शमशेर एक मिनट को गूँगा हो गया—ताजो बोली—"गूँगे हो गए क्या? देखो आज मैं ढेर से रुपए लाई हूँ—चलो कहीं घूमने चलें।" शमशेर को अपनी गुम हुई आवाज़ मिल गई :

"कहाँ से रुपए लाई ताजो?" प्रश्न का उत्तर शमशेर जानता था पर न जाने क्यों फिर भी उसने यह सवाल किया।

"चौराहे वाले लाला का बेटा आया था। निरा गदहा है—ये रुपए दे गया!" ताजो हँस पड़ी—शायद आदमी की मूर्खता पर—शायद उस लाला के बेटे पर जो ज़िन्दगी की देवी से उसका मिठास लेने आया था पर सिवाय रुपए देने के और कुछ न कर सका था।

"ताजो यहाँ बैठ जाओ। तूने यह क्यों किया ताजो—यह तो शर्म की बात है। तू मेरे साथ रह—मैं तुझे प्यार करता हूँ। हम, तुम दोनों सुख से रह लेंगे।" शमशेर की आवाज़ में दुख था—उत्तेजना थी—इच्छा थी। ताजो हँस पड़ी :

"यह प्यार करते हैं मुझे—भूखे मरेंगे हम तुम—भूख से ज़्यादा शर्म की क्या बात है! तुम तो बिल्कुल....बौड़म हो!"

आख़री शब्द ताजो ठीक से न कह पाई—उसके होंठ शमशेर के होंठों पर थे। उस चुम्बन में और चीज़ों के साथ वह वात्सल्य भी था जो हर नारी में हर पुरुष के लिए होता है। दोनों की गर्म साँसें एक दूसरे से उलझ गयीं—शमशेर को पहली बार किसी औरत ने चूमा था—पहली बार औरत का जिस्म उसके इतना क़रीब आया था—वह तड़प गया—उसके शरीर के अन्दर उबलती हुई उत्तेजना के सारे चश्मे एक दम फूट पड़े—उसके शरीर का हर अंग कामना की उमंग से फड़क उठा। एक हाथ से उसने ताजो के घुँघराले बालों को ज़ोर

से खींचा—'आह' कह कर ताजो के हाथ शमशेर के गले में और कस गए—शमशेर ने दोनों हाथों से ताजो को अपने जिस्म से बाँध लिया। पीछे की तरफ़ रक्खी हुई लालटेन में पैरों की ठोकर लगी—कई बार लौ तेज़ होकर बढ़ी और फिर एक झटके से शांत होकर बुझ गयी।

बरसों—बरसों की थमी हुई शमशेर की उन्मत्त जवानी उमड़ पड़ी और ताजो के शरीर की मांसल गहराइयों में कुछ ऐसे समा गयी कि जैसे चिर-यौवना धरती की कोख समा लेती है आकाश से झरते हुए मेघों के उन्माद को। तूफ़ानी सैलाब शमशेर के शरीर पर होकर गुज़र गया था—उसे लगा था कि जैसे उसके शरीर की हर नस और मांस की हर उपशिरा में कोई वेगपूर्ण झंझावात आ गया हो। और हर तूफ़ान के बाद जैसे कुदरत सहम जाती है वैसे ही वह भी ताजो के आलिंगन में शिथिल सा पड़ा था। और फिर उसने ताजो के बारे में सोचा—उसके अन्दर की महान आदिम नारी के बारे में सोचा—औरत की शारीरिक शक्तियों के विराट रूप को देखा उसने उस घड़ी में। औरत—जो अपने शरीर की सँकरी सीमाओं के अन्दर आदमी के शरीर के तूफ़ान और उसकी तृष्णा के शोलों को समेट लेती है और उसके बदले में आदमी को अनन्त सुख और शांति का वरदान दे देती है। कितने भिन्न थे यह सब विचार उनसे जा उसके दिमाग़ में पहले कभी थे। क्योंकि शायद जब कमला ने उससे उसका रसपूर्ण यौवन माँगा था तो कमला के पास उसके उपलक्ष में वह सब नहीं था जो ताजो ने उसे दिया था—वह उसकी जवानी के अंगारों को शांत नहीं कर सकती थी, वह केवल उन्हें भड़का सकती थी। कमला की वासना उससे सब कुछ ले ही सकती थी—बदले में दे कुछ नहीं सकती थी क्योंकि कमला के अन्दर की नारी पूर्ण नहीं थी—सुसंगठित नहीं थीं। परिस्थितियों और परम्पराओं के धुँए में उसका व्यक्तित्व कुंठित और अपूर्ण रह गया था—उसके अन्दर वही कमज़ोरियाँ थीं, नादानियाँ थीं जो उस तरह और लाखों-करोड़ों इन्सानों में होती हैं और जिनके

व्यक्तित्व टूटे हुए हैं और जो चलते हुए रगड़ मारते हैं और प्यार करते समय खरोंचे मार सकते हैं।

और गोकि ताजो वेश्या ही थी फिर भी उसके अन्दर जो औरत थी वह सुडौल थी—सम्पूर्ण थी। अगर उसके यौवन में बर्फ़ में लपटें उठा देने वाली आग थी तो उसके शरीर की हर धड़कन में वह ताक़त भी जो आदमी के शरीर के कोलाहल को अपने में समा कर उसे शांति दे सकती थी—वह अपने गुणों की चरम् पराकष्ठा में प्रेयसी भी थी और माँ भी।

कमरे के जीवित अन्धकार में अधखुले नेत्रों से ताजो ने शमशेर को देखा—ताजो के लिए शारीरिक सहवास का अनुभव कोई नया नहीं था! पहले भी लोग—समाज के भले लोग जिनके ऊपरी और पाक व्यक्तित्व के अन्दर सड़ती हुई वासना को उनके अपने समाज में कोई निकास नहीं मिला था—ताजो के पास आए थे और चाँदी के पंजों से उसके यौवन को नोच-खसोट कर चले गए थे। शरीर के उस व्यापार में समर्पण नहीं था—आत्मा का संगीत नहीं था—भूख की बेबसी थी; उसमें दिल को एक बार गुदगुदा देने वाला प्यार नहीं था—घृणा थी; वह सौदा था—दो दिलों में हिलोरें लेती हुई उमंगों का मधुर नृत्य नहीं। पर शमशेर की बाँहों के रंगीन पाश में, आत्मा तथा शरीर के उस समर्पण में ताजो को जो अलौकिक सुख मिला उसे वह अबोध-अनपढ़ लड़की महसूस तो कर रही थी लेकिन समझ नहीं पा रही थी—शायद उसे समझने की वह कोशिश भी नहीं कर रही थी। बस, उसके दिल और उसके दिमाग़ में एक नया कौतूहल था जो शायद पहली बार आदिम पुरुष और आदिम नारी के महा मिलन के बाद मानव-सृष्टि की जननी के दिल में पैदा हुआ होगा। दो शरीरों के उस पवित्र मिलन के आलोक में थोड़ी देर के लिए भूख, बेबसी, लाचारी और नफ़रत के काले बादल बिल्कुल गुम हो गए।

अँधेरे में ताजो के सन्तुष्ट होठों ने शमशेर की अधखुली पलकों

को चूम लिया और उसका सिर दबा लिया अपने धड़कते हुए गुदगुदे वक्ष में जिनमें प्रेम की इस पुण्य लीला की सुगन्धि आ रही थी। शमशेर की बाँहों ने ताजो के शरीर को फिर से अपने नज़दीक कर लिया और बालक की तरह उससे चिपक गया। उनके चारों तरफ़ उनकी अपनी-अपनी मजबूरियों और लाचारियों के बयाबान फैले पड़े थे—उनके चारों तरफ़ उनकी खुशियों के छीनने वाले समाज के सहस्रों ज़हरीले नाग फन फैलाए फुफकार रहे थे। लेकिन थोड़ी देर के लिए इस सबसे बेख़बर धरती के दो लाल केवल एक दूसरे के शरीरों के महा-मिलन से प्रदान किए हुए आदि सुख में मग्न बालकों की तरह एक दूसरे के बाहुपाश में उलझे हुए सुख की पवित्र नींद और स्वप्नों के मधुर संसार में खोए हुए थे। जब रात को रामसिंह देर से लौट कर आया तो उसने इन दोनों को ऐसे ही पाया। उसका चेहरा हर्ष से चमक उठा—उसे सन्तोष हुआ कि दो भली आत्माओं का मेल हो गया।

१०

बाबू गिरजा दयाल लगभग चालीस-पैंतालिस साल के व्यक्ति थे। कोई बीस-पच्चीस साल पहले उन्होंने इंट्रैंस पास किया था। अपने गाँव के वह उन चन्द आदमियों में से थे जिन्हें इस बात का गौरव प्राप्त था। उनके दादा-परदादा ख़ानदान की पचास बीघा ज़मीन पर पले और बड़े हुए थे—धरती से उन्हें जीवन मिला था—धरती के लिए उन्होंने अपना जीवन दे दिया था। खेतों के छोर पर फैले हुए क्षितिज के उस पार उनकी कल्पना ने कभी नहीं झाँका था—बन्द आसमान के ऊपर उनके सपनों का पंछी कभी नहीं मँडराया था। ज़मीन उनके जीवन की देवी थी और चौपाल उनका क्रीड़ास्थल—उनकी पत्नियाँ केवल उनके बच्चों की जननी थीं। उनका जीवन सभ्यता का आदर्श न सही—सन्तोष का स्वर्ग अवश्य था।

लेकिन उनकी ज़िन्दगी की सीमाओं के बाहर उमड़ता हुआ कौतूहल आख़िरकार घुस ही आया—वर्षों से बँधी हुई उन सीमाओं के अंदर। गिरजा दयाल परिवार के पहले बालक थे जिनका नाम स्कूल के मदरसे में लिखाया गया। बालक के दिमाग़ की उर्वरा भूमि पर ज्ञान का बीज पड़ा और ख्वाबों के रंगीन फूल जल्दी ही निखर आए—जिज्ञासा जाग उठी; बालक ने परम्परा के क्षितिज के पार झाँका और उसके मन में आगे बढ़ने के अरमान पैदा हुए। मदरसे से स्कूल—गाँव से शहर—भूत से भविष्य में गिरजा दयाल आए। उनके अन्दर पुरानी रीतियाँ दम तोड़ रही थीं—नये युग की नयी सभ्यता ने उन्हें चकाचौंध कर दिया।

गिरजा दयाल ने इंट्रेंस पास किया और अँग्रेज़ साहब के दफ़्तर में बाबू की जगह के लिए अर्ज़ी दे दी। साहब उन्हें देख कर ख़ुश हुआ और धरती का मुक्त भोला-भोला बेटा कोट-पतलून पहन कर प्रसन्न हो गया और दफ्तर के अन्धेरे, बन्द कमरों और भूरे रंग की फ़ाइलों में गुम हो गया। शादी हुई—बीबी आई—बच्चे हुए! गिरजा दयाल—विदेशी की मुस्कराहट पर ख़ुश हो जाने वाले और उसकी झिड़की पर मुरझा जाने वाले गिरजा दयाल—मामूली बाबू से एकाउन्टेंट और एकाउन्टेंट से हेड-क्लर्क हुए।

माँ की किलकारी भरने वाली नन्हीं-सी बच्ची से मोहनी जवान हुई। वह स्कूल जाने लगी—उसने किताबें पढ़नी शुरू कीं—पत्रिका और रिसाले देखने शुरू किए—सिनेमा-थियेटर के नाम सुने और कभी-कभी अपने माता-पिता के साथ सीता और राम, राधा और कृष्ण, शकुन्तला और दुष्यन्त के धार्मिक फिल्म देखे। बर्बस ही जवानी के दायरे में डगमगाती हुई मोहनी के दिमाग़ में सस्ती, अश्लील प्रणय लीला को और ज़्यादा जानने की जिज्ञासा का अंकुर फूटा।

गिरजा दयाल की आत्मा के बहुत अन्दर जब उनके पूर्वजों की वाणी—विवेक की आवाज़—इस लोक के टूटे हुए सपनों से घबराकर

परलोक को सम्हालने की इच्छा से पैदा हुई तो घर में भगवान की मूर्ति की स्थापना हुई और पूर्णमासी की कथाएँ आरम्भ हुईं।

पर आधुनिकता का बीज तो पड़ ही चुका था और उसे फलना-फूलना था ही। मोहनी की सहेली आशा 'इन्टरवल' में उसे अपने रोमांस के किस्से सुनाती—कहती कि जैसे 'मजनूं' 'लैला' को प्यार करता था वैसे ही उसका रमेश भी उसे प्यार करता था और क्योंकि मोहनी को यह न मालूम था कि मजनूं लैला को कैसे प्यार करता था इसलिए समझदार आशा ने उसे वह क़िस्सा भी बताया। मोहनी के लाइब्रेरी-कार्ड पर उपन्यासों के इन्डेक्स नम्बर बढ़ने लगे और स्कूल के ठेले में से उसकी जवान आँखें साइकिल पर कालेज जाते हुए लड़कों में अपना मजनूं ढूँढ़ने लगीं।

घर में जो वातावरण था वह मोहनी के दिल में नए-नए खिलते हुए अरमानों की तरुण कोंपलों के लिए पाले की तरह था—इसलिए उसकी उमंगों का पंछी कभी भी पंख खोल कर आज़ादी से नहीं उड़ सकता था और होता यह है कि जब जवानी को सही तरह की आज़ादी नहीं मिलती तो उसका कुंठित विद्रोह अपनी सीमाओं के अन्दर सड़ने लगता है, भिन्न धाराओं में बहने लगता है और व्यक्ति के विकृत रूप का प्रदर्शन करता है। व्यक्ति इस अवस्था में मानसिक व्यभिचार का आदी हो जाता है! मोहनी के साथ भी यही हुआ।

जब ऐसा था तभी शमशेर ने मोहनी को पढ़ाना शुरू किया था। सस्ती पत्रिकाओं में छपी हुई सस्ती कहानियों में मोहनी ने जो अद्भुत और अश्लील प्रणय कथाएँ पढ़ी थीं उसमें तो यही था कि हमेशा ही ट्यूशन पढ़ाने वाले मास्टर और उसकी छात्रा में 'रोमांस' चल पड़ता था। मोहनी ने भी अपने आप को किसी ऐसी ही कहानी की 'नायिका' और शमशेर को 'हीरो' मान लिया। जब शाम के समय शमशेर उन्हें—मोहनी और शामू को—पढ़ाने आता तो वह बड़ी तरसी हुई आँखों से उसे देखती। और रात को जब सारी दुनिया सो जाती

तो भी मोहनी को नींद नहीं आती और विकल आँखों से आसमान के सितारों को देखती-देखती मोहनी न जाने कब असलियत की दुनिया से ख्वाबों की दुनिया में पहुँच जाती। उन सपनों के महलों में कभी शमशेर उसे छेड़ता और वह शर्माती—कभी वह उसके गले में गुलाब की माला डाल देता, अपने बाहुपाश में उसे बाँध लेता और वह निगाहें ज़मीन पर डाल देती और उससे कहती—"हटो—तुम बड़े वो हो"—वह दूल्हन सी सजकर सुहाग की सेज पर बैठी होती और दूल्हे के रूप में शमशेर आता और सुख की मधुर कल्पना से उसका दिल धड़कने लगता। और दिन की ठंडी छाँहों में भी उसके सपने उसका साथ नहीं छोड़ते। सपने कभी इतने बलवान भी हो जाते हैं कि वह ख्वाब देखने वाले के लिए असलियत का रूप ग्रहण कर लेते हैं—मिथ्या सत्य हो जाता है और कल्पना में यथार्थ का रंग आ जाता है।

मोहनी के ख्वाबों ने उसकी पूरी हस्ती पर अधिकार कर लिया था। इसलिए जब शमशेर मोहनी को पढ़ाता होता तो उसकी आँखों में एक अजीब सी रहस्यमयी मुस्कराहट होती। धीरे-धीरे शमशेर को यह पता लग गया कि उस मुस्कराहट का रहस्य क्या है। पहले शायद कभी वह मोहनी के इस रूप को नफ़रत से देखता लेकिन जेल जाने के बाद से जो अन्तर उसमें आया था उसकी मदद से वह इस नादान बालिका का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर सकता था—वह समझ अब सकता था कि यह मोहनी के दिल की नादानी है—और इन सब कारणों से वह मोहनी से घृणा नहीं करता था—उसे उस पर तरस आता था।

११

ज़िन्दगी की दुश्वारियों के काले मेघों के बीच बिजली सी पवित्र दूध सी और साफ़ ताजो आज दुविधा में थी!

दुनिया में उसे लाने वाले लोग कौन थे, यह ताजो को नहीं मालूम

था—उसने कभी यह जानने की न तो आवश्यकता समझी थी, न कभी कोशिश की थी। उसने बस्ती में रहने वाले लोगों को अपने हम-जोली—भाई-बहनों की तरह माना था। उसने सोने के पालने में आँखें नहीं खोली थीं—उसकी पड़ोसिनें वेश्या थीं—उसके पड़ोसी चोर, लफंगे, गिरहकट। उसके मकान के सामने न तो बड़े-बड़े मखमली 'लॉन' थे, न उनमें लगे 'पाम' और 'यूकेलिप्टूस' के दरख़्त ठंडी हवाओं में लहराया करते थे। उसके मकान के सामने तो वर्षों से एक गन्दा नाला बहता चला आया था जिसमें कीड़े भिनभिनाते थे और जिनकी सड़ाँध प्रकृति को भी दूषित कर देती थी। ताजो ने अपने बचपन से बेबसी और लाचारी का तांडव नृत्य देखा था। उसने यही देखा—समझा था कि भूख और बीमारी उनके सबसे बड़े शत्रु हैं जिनसे किसी भी कीमत पर उन्हें लड़ना था और विजय पानी थी।

समाज ने उन पर अपने दरवाजे बन्द करके ताले जड़ दिए थे और उन्हें पतित करार दे दिया था। दलित इंसानियत के ख़िलाफ़ भरे-पूरे समाज की साज़िश थी कि वे उनसे उनकी इज्ज़त और इंसानियत छीन कर उन्हें इतना-सा दे दें जिससे वह एक दम तो नहीं धीरे-धीरे घुट-घुट कर मरें। ताजो ने अपने साथियों को सड़ते-मरते देखा था, उसे इस बात का भी ज्ञान था कि दुनिया के लोग जो उनकी दुर्दशा के कारण थे उन्हें नीची नज़रों से देखते थे। ताजो की साफ़-सुथरी आत्मा में इंसानियत की ज्वाला थी—वह दुनिया को और उसके रीति-रिवाजों को उपेक्षा की दृष्टि से देखती थी। उसका जवान शरीर जब समाज के लाड़लों के सामने नंगा होता था तो अपनी उस नग्नता पर ख़ुद उसे शर्म नहीं लगती थी—उसकी नग्नता के सामने तो तमाम समाज का ढोंग ढह जाता था और रेशम के कपड़ों में लिपटे हुए आदमी के पतन का सही रूप वह स्वयं देख सकती थी और उसके अन्दर की अनंत नारी उन छोटे आदमियों के इस छोटे विश्वास पर हँस देती

थी कि वे उनका नाश कर सकेंगे। वह उन सब से घृणा करती थी—उसे भूख और लाचारी से नफ़रत थी।

लेकिन उस एक रात की छोटी-सी घटना ने ताजो की अन्तरात्मा में भरे हुए विष को मधु में बदल दिया था। होने को ताजो की रग-रग में आदिम नारी का अमर प्रेम भरा हुआ था लेकिन अगर होश आते ही वह परिस्थितियों के क्रूर जाल में फँस गयी थी और अगर परिस्थिति-वश ही उस प्राकृतिक प्रेम पर घृणा का आवरण पड़ गया था तो इसमें ताजो का दोष ही क्या था। कोई व्यक्ति वैसे अपने में बुरा नहीं होता लेकिन जब वह अपनी राह में हर जगह अजगरों की तरह लेटे हुए विघ्न पाता है, जिन्हें वह पार कर नहीं पाता, तो वह उस चोट खाए शेर की तरह हिंसक हो जाता है जो शायद अपनी स्वाभाविक स्वतंत्रता में नादान शिशु को भी पुचकार सकता है—प्यार कर सकता है।

ताजो उन लाखों-करोड़ों इन्सानों में से थी जिनके चारों तरफ़ बाधाओं की, मुसीबतों की कठोर चट्टानें फैली हुई हैं और जिनके शरीर और आत्माएँ उन काली चट्टानों से टकरा-टकरा कर ज़ख्मी हो चुकी हैं। उन लाखों-करोड़ों इन्सानों के सिमटे-सहमे हुए व्यक्तित्व—जिन्हें समाज की घृणा ने गन्दी बदबूदार गलियों में झोंक दिया है—भूख की आग को अपने सूखे हुए आँसुओं से शांत करने का प्रयत्न कर रहे हैं। उनके लिए ज़िन्दगी बस इतनी-सी है।

अपनी दुनिया के इस सघन अन्धकार में अरमानों का वह नटखट शिशु न जाने कब और कहाँ खो गया था, यह ताजो को नहीं मालूम था। शरीर की दीवारों के अन्दर कभी चेतना का पंछी चहक पड़ता था और उसकी रगों में तब ज़िन्दगी बल खा जाती थी। लेकिन कल की भूख के लिए आज की रात—आज की जवान, रंगीन रात—वह रात जिसमें ज़िन्दगी के बुलबुले आसमान में सितारे बनकर थिरकते हैं, जिसमें आज़ाद आदमी और आज़ाद औरत प्रणय के कितने ही मत-वाले खेल खेल सकते हैं—जवानी और ज़िन्दगी की रात, मुरझाए हुए

अरमानों और सहमी हुई आशाओं की एक रात, पाँच या दस रुपए में नीलाम हो जाती है। और हालाँकि ताजो का यह विश्वास था कि परिस्थितियाँ उसे कभी ख़त्म न कर सकेंगी फिर भी यह तो सत्य था ही कि उस लोहे के घेरे के पार मुद्दत से सोए हुए सपने कभी नहीं जाग सके थे।

हर जवान औरत कम से कम एक बार तो अवश्य ही प्यार का सपना देखती है लेकिन उस प्यार के सपने का दृश्य समाज के अलग-अलग तबक़ों में अलग-अलग होता है। ऊँचे पढ़े-लिखे दौलतमन्द वर्ग में प्यार के उस कोमल से ख्वाब पर सोने का पानी चढ़ जाता है—चढ़ा दिया जाता है—और रेशमी साड़ियों—पाउडर और लिपस्टिक—बॉल-रूम और मोटरकारों के बीच में प्यार केवल वासना बन जाता है जो अलग-अलग रंग की साड़ियों के साथ 'मैच' करने के लिए सैन्डिलों की तरह बदला जा सकता है। उसके नीचे के मध्य वर्ग में शहनाई और दहेज़ के साथ बेचा हुआ प्यार असन्तोष के आधे दर्जन बच्चों की माँ बन जाता है।

जिस वर्ग की ताजो थी उस वर्ग के लोगों को तो अपने आप को महज़ इन्सान कहने का भी हक़ नहीं था और इस तरह न सिर्फ़ उनसे दौलत और ख़ुशी और एक अच्छी ज़िन्दगी के हक़ छिन चुके थे बल्कि भावनाओं, आशाओं और सपनों पर भी उनका कोई हक़ नहीं था—उनका कोई अधिकार नहीं था। और इसलिए इस वर्ग की औरतों के दिलों में मचलता हुआ प्यार का नन्हा-मुन्ना-सा लाल भूख की लपटों में जल कर भस्म हो जाता था, इन्सानियत का दावा करने वाले हैवानों की वासना के ज़हर में घुट-घुट कर मर जाता था—पैदा होने के भी पहले। ताजो को यह मालूम नहीं था कि उसके दिल में भी कभी प्यार के सपने ने अँगड़ाई ली थी। उसने अपनी ज़िन्दगी के तौर-तरीक़े को इसलिए स्वाभाविक माना था कि उसके अलावा उसने देखा ही कुछ नहीं था। और इस तरह ज़िन्दगी की देवी को प्यार के अस्तित्व का

पता भी नहीं था। वह बस यह जानती थी कि अपनी गन्दी वासना से अंधे समाज के लाल उसके शरीर के अंदर अपने बदबूदार कोढ़ को उँडेल कर एक गंदा सुख प्राप्त करते हैं और चेष्टा करते हैं कि उसका यौवन सोने और चाँदी की लपटों में जल कर भस्म हो जायगा। पर ताजो की जवानी तो अनंत है—कम से कम ताजो तो यही समझती थी—और इसीलिए यह भी समझती थी कि वे सब आदमी जो उसके रूप और जवानी की क़ीमत लगाते हैं वह महज़ कीड़े-मकोड़े हैं जो कि उसे ख़त्म नहीं कर पा रहे हैं—बल्कि उसके यौवन की पवित्र और अनन्त आग में खुद जल-जल कर मर रहे हैं।

लेकिन शमशेर के यौवन का उन्माद भरा सोम ताजो के और गाहकों की तरह वासना का ज़हर नहीं था और इसलिए वह सिर्फ़ ताजो के शरीर की सतह को छूकर ही शांत और ठंडा नहीं पड़ा था। उसके यौवन की शराब मयख़ाने की ज़मीन पर पड़े टूटे हुए कुल्हड़ में बचे हुए आख़िरी क़तरों की तरह नहीं थी बल्कि बेल पर लगे हुए अंगूरों के अन्दर रसमसाती हुई ज़िन्दगी थी जिसमें सूरज की किरनों ने जानदार 'ऐटम' भर दिए थे।

और इसलिए शमशेर के यौवन की आग ने उसके ख़ून के साथ-साथ ताजो के शरीर की सबसे अन्दरूनी तहों में प्रवेश कर दिया था—ख़ून ख़ून से मिल गया था और नारी के शरीर की महान उत्तेजना जो परिस्थितियों के पाले की वजह से अन्दर ही अन्दर जमकर कुन्ठित हो गयी थी, पुरुष के उस वेगपूर्ण उन्माद की गर्मी से पिघल गयी - मुक्त हो गयी। शमशेर के शरीर की गर्मी ने ताजो के अन्दरकी नारी के सुषुप्त-सपनों को न सिर्फ़ जगा ही दिया था बल्कि जोरों से झकझोर भी डाला था।

नारी और पुरुष के महामिलन में इतना सन्तोष है—इतना सुख और सम्पूर्ण शान्ति है, यह ताजो को अब मालूम पड़ा और इस नयी चेतना ने ताजो को पागल कर दिया—उसके अन्दर जवानी ज़िन्दगी

के घुँघरू बाँध कर नाच उठी लेकिन उसका दिल रो पड़ा उन सब बीते हुए दिनों की याद करके जो बर्बाद हो चुके थे। उसका दिमाग़ घूम गया यह सोच कर कि उसका वह पवित्र शरीर जो केवल प्रेम की मधुर क्रीड़ा के लिए ही था—उसे बिकना पड़ा था पेट की ज्वाला शांत करने के लिए। उसकी आँखों के सामने एक नयी दुनिया खुल पड़ी थी—एक महान आलोकपूर्ण जगमगाता हुआ संसार—जिसके सामने उसे अपनी दुनिया वीभत्स लगी थी—प्रेम की पवित्रता के सामने पेट की भूख बहुत छोटी और बेमाने दिखाई पड़ी थी। आत्मा और शरीर में एक ज़बरदस्त संघर्ष था और ताजो इसलिए दुविधा में थी।

अपने उस नये पाए हुए प्यार के मतवालेपन में शमशेर और ताजो ज़्यादा—और ज़्यादा डूबने लगे और एक दूसरे की बाँहों में लिपटे हुए जाड़े की लम्बी रातें बड़ी जल्दी-जल्दी गुज़रने लगीं। समाज के सताए और तिरस्कृत दो व्यक्ति अपने शरीरों के स्वर्ग में पूर्णतया सुखी और सन्तुष्ट थे।

ताजो का सुख का भूखा शरीर इतना सारा सुख एक ही दफ़ा में बर्दाश्त नहीं कर पाया। उसके उस नए सुख के सामने ताजो का पुराना सब कुछ बहुत बेकार था—वह तो महज़ इसलिए था कि ताजो ज़िन्दगी के असली सुखों से पहले बिल्कुल बेख़बर थी—उसे पहले पता ही न था कि ज़िन्दगी में इतना सुख और रंगीनियाँ हैं और जब उसे यह अनमोल सम्पत्ति मिली तो वह पहले की बातें कुछ-कुछ भूलने लगी।

एक दिन सिम्मो ने ताजा को रोक लिया!—"क्यों री! यह नयी-नयी प्रीत बहुत भा गई है तुझे!"

ताजो ने सिम्मो को गले लगा लिया और उसके कन्धों में अपना मुँह छिपा लिया—ताजो का सारा बदन पुलक उठा।

सिम्मो ने ताजो का चेहरा अपने हाथों में ले लिया और उनकी आँखें मिल गयीं कुछ समय के लिए; ताजो की आँखों में नए सुख का नया नशा था और सिम्मो की आँखों में बर्बाद जवानी की करुण झलक

—सिम्मो ने ताजो से पूछा, "बहुत अच्छे लगते हैं शमशेर बाबू तुझे ?" ताजो के जिस्म में ख़ुशी की लहर दौड़ गयी। पहली दफ़ा किसी ने उसके प्यार के बारे में उससे बात की थी; उसकी आँखें मुँद गयीं और उसने स्वीकृति में अपनी गर्दन हिला दी।

फिर न जाने सिम्मो को एक दम क्या हो गया—उसने एकाएक अपने आप को ताजो से छुड़ा लिया और एक तरफ़ चल दी, "बेचारी ताजो !" सिम्मो के चेहरे पर दया थी ताजो के लिए।

"बेचारी ताजो !" ताजो घर के बरामदे में बैठ गयी चकरा कर —वह तो बहुत .खुश थी अपने इस नए और महान अनुभव से और सिम्मो कोई उससे जलती नहीं थी—वह तो ख़ुश ही हुई होगी। फिर बदनसीब सिम्मो की तो किस्मत में ही यह था कि वह अपने बर्बाद जीवन के गंदे नाले में पड़ी—पड़ी सड़ती रहे—वह उसकी ख़ुश-नसीबी पर तरस खाए, यह कुछ अजीब सा लगा ताजो को। लेकिन फिर भी उसके दिमाग़ में सिम्मो का वह जुमला गूँजता ही रहा— "बेचारी ताजो !"

और रात को जब जवानी ख़ुद अपने ही नशे में झूम उठती है और सनोबर की ठंडी छाहों में सितारों की बारीक किरने नृत्य करने लगती हैं चाँद की वंशी की धुन पर, और बेला और चमेली और सलीमा और सिम्मों के गन्दे कोठों में वासना की दुर्गन्ध चिराग़ के कड़ुवे धुएँ से लिपट कर मौत का संगीत गाने लगती है तब ताजो शम-शेर की जवान बाँहों में लिपटी हुई पवित्र प्रणय के अमृत में नहाती है और तब वह इन्सानी दुनिया की हदों को पार कर के स्वर्ग के सदा-बहार बागों में पहुँच जाती है—जहाँ भगवान का घर है।

पर इन्सान का भगवान से क्या सरोकार ? इन्सान भगवान होने की कोशिश भी क्यों करे ? उसका भगवान तो उन्हीं गन्दी नालियों, बदबूदार चीथड़ों और कोठों के अन्धकार में है। स्वर्ग के सुनहले महलों में रहने वाला भगवान उसका भगवान नहीं है।

'बड़ी बी' ने ताजो को रोक कर एक दिन कहा, "क्यों री ! पागल हो गयी है—सारे गाहक तेरे कोठे के बन्द दरवाजों को देख कर पलट जाते हैं; सारा धन्धा चौपट हुआ जा रहा है। आज तो तू गुलछर्रे उड़ा रही है—कल भूखों मरेगी—कोई कौड़ियों को नहीं पूछेगा। बड़ी प्रेम करने चली है—बावली कहीं की !"

'बड़ी बी' एक ज़माने में हुस्न की मलिका थीं और अब वह ज़िन्दगी में ही इतना मर चुकी थी कि मौत भी उसके पास आने से घबराती थी। मुसीबतों ने न सिर्फ़ उससे उसका रूप—उसका यौवन—उसकी ज़िन्दगी ले ली थी बल्कि उसे पागल भी बना दिया था। वह बदनसीब तो मरी भी नहीं थी—वह तो जीते जी प्रेत थी जो धरती पर इन्सान की तरह नहीं—कंकाल की तरह चलती थी।

अगर सिम्मों के उन मामूली से दो शब्दों ने ताजो के चैन को थोड़ी देर के लिए हिला दिया था तो 'बड़ी बी' की उन भोंडी बातों ने ताजो को अपने सुख की दुनिया से वापस लाकर उसे अपनी ही गन्दी दुनिया में ला पटका था। ताजो भूल गयी थी कि वह एक मामूली-सी वेश्या है—और भूख, बीमारी और मुसीबतें उसके शत्रु हैं। वह समाज के लाड़ में पली हुई नाज़ुक परी नहीं है जो सोने की दीवालों और रेशम के पर्दों के बीच में बैठ कर प्रेम के ताने-बाने बुन सकती है। उसका तो किसी चीज़ पर कोई अधिकार नहीं है—प्रेम पर भी नहीं। प्रेम करना तो उसके लिए एक भूल है—नादानी है—एक मृग-तृष्णा है जिसके पीछे वह भटक रही है जबकि मुसीबतों के बियाबान उसके चारों तरफ़ फैले पड़े हैं। ज़िन्दा रहने के लिए रोटी ज़रूरी है—पैसा ज़रूरी है। उसका रूप और उसकी जवानी पूजा के फूल नहीं हैं जो भगवान के चरणों में चढ़ाए जायँ और वह लाख ऐसा करना चाहे फिर भी कर नहीं सकती क्योंकि उनसे ही तो उसे ज़िन्दा रहना है—रोटी कमानी है। प्रणय के उस ख़ूबसूरत नृत्य में सुख तो है पर मौत भी—शमशेर की बाँहों के मधुर आलिंगन में अमृत तो

ज़रूर है पर भूख का इलाज नहीं। और रोटी अमृत से ज़्यादे काम की चीज़ है क्योंकि भूखा आदमी अमर होना नहीं बल्कि मर जाना चाहता है।

ताजो का दिल हज़ार बारीक टूकड़ों में टूट कर ज़मीन पर बिखर गया—वह दिल जो उसे अभी कुछ ही दिन हुए तो मिला था। प्यार करना मूर्खता है, कम-से-कम उसके लिए। माना कि उसमें सुख बहुत है लेकिन ज़िन्दा रहने के लिए उसे अपने प्यार को क़ुरबान तो करना ही पड़ेगा। अपना शरीर, अपना रूप, अपना यौवन बेचना पड़ेगा—पाँच या दस रुपए में ताकि वह पेट भर खा सके—कपड़े पहन सके। ज़िन्दा रहने के लिए मरना ही पड़ेगा।

और वेश्या के दिल की गहरी गहराइयों में कोई सुनहला बारीक तार टूट गया और किसी को मालूम नहीं पड़ा—किसी ने ग़म नहीं किया—किसी ने आँसू नहीं बहाए।

१२

दिसम्बर के महीने में रामसिंह ट्रेफ़िक ड्यूटी से हटा दिया गया और उसे छेदा डाकू को पकड़ने के लिए पुलिस के एक जत्थे के साथ गाँव में जाना पड़ा। शमशेर और ताजो दोनों उदास थे—उसके जाने पर। रामसिंह दोनों को बहुत प्यार करता था। चलते वक़्त उसने कहा था 'तुम दोनों एक दूसरे का ख़याल रखना। 'एक दूसरे को ख़ुश रखने का भार केवल तुम दोनों पर ही है। पाँच दिन बाद ख़बर आई कि रामसिंह छेदा की गोली का शिकार बना और छेदा रामसिंह की गोली का।

शमशेर ने, जिसने बरसों—बरसों से किसी का सहारा नहीं लिया था, अब समझा कि रामसिंह ही उसका एक सहारा था। क़िस्मत ने उससे पहले ही सब सहारे छीन लिए थे, एक जो उसे अभी ही मिला था वह भी

ख़त्म हो गया था। पहले शमशेर के दिल में नफ़रत तो ज़रूर थी समाज और उसके रीति-रिवाजों से, लेकिन ग़म न था उसे किसी चीज़ का क्योंकि भलाई और सहारे की तो वह उम्मीद भी नहीं करता था। रेगिस्तान के तूफ़ानों के बीच अगर इन्सान चलता रहे जलती हुई बालू पर तो शायद उसे ज़बरदस्त पीड़ा तो ज़रूर होगी पर अफ़सोस तभी होगा जब उसे पल भर को छाँह मिले—लेकिन सिर्फ़ पल भर को और उसके बाद फिर वह भी मिट जाय। अनगिनत काली रातों के बाद चाँदनी मुस्कराई थी एक बार लेकिन बादल फिर से छा गए थे छुई-मुई से चाँद के ऊपर—रामसिंह के स्नेह ने शमशेर को दुख का वरदान दिया था।

और उस रात को ज़िन्दगी के जंगलों में भटकती हुई दो मासूम आत्माएँ एक दूसरे के इतना क़रीब सोईं—इस बेबसी और बेक़रारी से एक दूसरे की तरफ़ खिचीं और जुड़ गईं कि जैसे वह एक दूसरे की आख़िरी आशाएँ हैं—कि जैसे गरजते हुए तूफ़ानी समन्दरों में से वह एक दूसरे से सटकर ही निकल सकते हैं अन्यथा अकेले वह डूब जाएँगे। उन्होने अपने ग़म में एक दूसरे की ज़रूरत महसूस की और उस ग़म को डुबाने के लिए उनके शरीर अपनी जवानियों की शराब में सराबोर हो गए।

लेकिन भोर के पाले ने रात की रंगीन जवानी को अपनी बर्फ़ीली बाहों से कुचल डाला और जब सुबह हुई तो शमशेर के आलिंगन में दबी हुई ताजो को चेतना वापस आई—रामसिंह की मौत के ग़म से, शमशेर के प्रेम से भी ज़्यादा महत्वपूर्ण वह बात थी जो कल 'बड़ी बी' ने कही थी; भूख की बात, पैसे की बात, ज़िन्दगी की बात। प्रेम के आलिंगन में ताजो का शरीर ठंडा पड़ गया—वह धीरे धीरे अपने आपको मुक्त करके उठ बैठी और आख़िरी बार हल्के से शमशेर के बालों को चूम कर चली गयी।

उस दिन रात को भी ताजो शमशेर के पास न आई। शमशेर

तड़प उठा। रामसिंह की मृत्यु के ग़म को भूलने के लिए उसे पहले से कहीं ज़्यादे ताजो के साथ की ज़रूरत थी और वह सहारा? उसका दिल आशंका से काँप उठा! कमरे में—जहाँ वह ताजो का इन्तज़ार कर रहा था—उसका दम घुटने लगा और वह बाहर निकला। सामने ताजो का कोठा था, जो पिछले काफी समय से बन्द पड़ा था। आज उस कोठे के दरवाज़े खुले थे और उसमें से लालटेन की पीली रोशनी निकल रही थी और सीढ़ियों पर से एक आदमी के डगमगाते हुए क़दम नीचे उतर रहे थे। जिस शरीर को, जिस आत्मा को, जिस व्यक्ति को वह प्यार करता था वह एक बार फिर बिक गया था! क्यों? ऐसा क्यों? उसका—उसके अस्तित्व का—उसके प्यार का—उसकी जवानी का यह उपहास क्यों? आख़िर क्यों?

अँधेरी रात ने—उस घुटी हुई हवा ने—शमशेर को कोई उत्तर नहीं दिया। सहमी हुई फ़िजा ने—थमे हुए माहोल ने शमशेर के दिल का हाल न पूछा। शमशेर के बेजान क़दम अनजाने ही दरिया की तरफ़ बढ़ गए और शबनम की बरसात से तर बालू में शमशेर ने अपना जलता हुआ सिर गाड़ दिया।

दिन बीते और रातें बीतीं लेकिन ताजो शमशेर के पास न गई। उसके कोठे की सीढ़ियों पर पतित समाज का दानव अपने लड़खड़ाते क़दम लेकर चढ़ता-उतरता रहा और रौंदता रहा अपनी सोने की एड़ी से ताजो का फूल-सा यौवन। और इस बार ताजो ने पहले की तरह उन ख़रीदारों को वह घृणित जानवर नहीं समझा जिन्हें वह अपना अनन्त यौवन बर्बाद करने में असमर्थ समझती थी। आख़िर उन हज़ारों-करोड़ों वेश्याओं की तरह वह भी तो थी। उसे भी पाप की दलदल में सड़-सड़कर मरना था। ताजो जानती थी कि शमशेर उसके लिए कितना बेचैन होगा लेकिन शमशेर यह नहीं जानता था कि उन मौत की-सी सुनसान रात की तारीकियों में एक वेश्या का मैला-कुचैला तकिया न जाने कितनी बार तर हो जाता था नारी के पवित्र आँसुओं से—उसे नहीं मालूम था

कि न जाने कितनी मजबूर आहें क़िस्मत के बन्द दरवाज़ों से टकरा कर मर जाती थीं। शमशेर तो यही समझता था कि वह ग़रीब है, इसलिए उसकी प्रेयसी जो वेश्या है—जिसे पैसे की ज़रूरत है—उसके पास नहीं रुकी। उसकी आँखों में, उसके दिमाग़ में, उसके दिल में लहू के ज्वार-भाटे आए और गुज़र गए।

* * *

पहली तारीख़ को बाबू गिरजा दयाल के यहाँ से शमशेर को रुपए मिले। उसने उन तीन दस-दस रुपए के नोटों—तीन कागज़ के टुकड़ों को बहुत बेरुख़ी से देखा। अब क्या ज़रूरत थी उसको इन रुपयों की—उसकी दुनिया एक बार आबाद होकर बरबाद हो चुकी थी—उसे उन तीन कागज़ के टुकड़ों की अब कोई ज़रूरत नहीं थी। अकेले आदमी को पैसे की—रुपए की—यहाँ तक कि ज़िन्दगी की भी कोई ज़रूरत नहीं होती। और वह अकेला तो था ही—रामसिंह का स्नेह और ताजो का प्यार भुलावे थे जो मृगतृष्णा बन कर उसे रेगिस्तान में बहुत दूर तक ले आए थे और अब वे भुलावे ग़ायब हो चुके थे और जलता हुआ रेगिस्तान ठीक उसी तरह उसके आस-पास और चारों तरफ़ फैला पड़ा था।

यूँ सोचते-सोचते वह चम्पा गली में वापस आ गया—दस-दस रुपए के तीन नोट उसकी मुट्ठियों में भिंचे हुए थे—ताजो के कोठे में से लालटेन का गन्दा पीला प्रकाश निकल रहा था और सीढ़ियों पर किसी के क़दम चढ़ रहे थे—शमशेर की प्रेयसी के सौदागर के क़दम—पैसेवाले के क़दम जिन्होंने शमशेर के पवित्र प्यार को कुचल कर धूल में मिला दिया था। भिंचीं हुई मुट्ठी खुल गई—और शमशेर की आँखें उन तीन रंगीन कागज़ों पर गड़ गयीं। उस वक़्त शमशेर की आँखों में चिनगारियाँ भड़क उठीं और दिल में लपटें—उसे अपने मरे हुए प्यार का ग़म नहीं था, उसके दिमाग़ में पागलपन था। इस वक़्त

उसके पास भी पैसे हैं—शायद उस गन्दे कीड़े से भी ज़्यादा जो इस समय ताजो के कोठे की सीढ़ियों पर चढ़ रहा था। आज वह भी ताजो का शरीर ख़रीदेगा।

लपक कर शमशेर उन सीढ़ियों की तरफ़ बढ़ा और तेज़ी से चढ़ने लगा—उस बौखलाए हुए गन्दे कीड़े को शमशेर ने नीचे ढकेल दिया और खुद पलक मारते उस कमरे में दाख़िल हो गया जहाँ उसकी प्रियतमा वेश्या बनी बैठी थी उस हैवान के इन्तज़ार में जो आकर उसके सामने दो टुकड़े फेंक देगा और उस पर अपनी गन्दी वासना की मोहर ठोंक कर चल देगा। शमशेर को देख कर ताजो चीख़ पड़ी। उस हैवान के स्थान पर उसका प्रेमी—उसका शमशेर खड़ा था और उसके प्रेमी की आँखों में प्रणय का मधुर संगीत और आत्मा का पवित्र आलोक नहीं था—उसके प्रेमी की आँखों में नफ़रत की चिनगारियाँ थीं—वासना की भूख थी—प्रतिकार की लपटें थीं—पागलपन के शोले थे। ताजो सहम कर दो क़दम पीछे हट गयी :

"शमशेर.......तुम !"

शमशेर उसकी तरफ़ बढ़ गया और अपनी जलती हुई बाँहों में उसे कुछ ऐसे कस लिया कि मानो वह उसे तोड़ डालेगा।

"डरो मत....घबराओ मत। शमशेर प्यार की भीख माँगने नहीं आया है अपनी प्रेमिका से, वह वेश्या से उसका शरीर ख़रीदने आया है—आत्मा की पुकार से नहीं क्योंकि उसके लिए तुम्हारे कान बहरे हैं बल्कि पैसे से जो तुम्हारी ज़िन्दगी है। शमशेर आज तुम्हारी क़ीमत अदा करेगा क्योंकि आज उसके पास पैसा है। डरो मत ! मुँह-माँगे दाम दूँगा।"

ताजो बहुत पहले ही शिथिल हो चुकी थी, शमशेर ने उसे खाट पर पटक दिया। उस रात को शमशेर और ताजो के शरीर प्रेम के पवित्र आलोक में नहीं नहाए। उस रात को शमशेर ने रूप के और सौदागरों की तरह वेश्या के बेजान शरीर में अपनी धधकती हुई वासना की

गँदली धार उलट दी और निश्चेत ताजो के वक्षस्थल पर दस-दस के तीन मुड़े हुए नोट फेंक कर शमशेर तेज़ी से कमरे के बाहर चला गया।

* * *

दो-तीन दिन शमशेर कमरे के बाहर नहीं निकला—वह सुस्त, अनमना और उदास पड़ा रहा और उसकी तबियत न हुई कि वह दुनिया की सूरत तक देखे। जब कुछ रोज़ ऐसे ही गुज़र गए तो बाबू गिरजा दयाल का छोटा पहाड़ी नौकर शमशेर का घर ढूँढ़ता हुआ वहाँ तक पहुँच गया और उसने दरवाज़ा खटखटाया। अजनबी की आहट पाकर शमशेर बाहर निकला।

"नमस्ते मास्टर साहब! बाबूजी ने बोला है कि आप इतने दिन से आए नहीं और....और....हाँ! छोटी बीबी ने पूछा था कि आप की तबियत कैसी है—उन्होंने आप को याद किया है।" रटे हुए सबक़ की तरह नौकर अपनी बात कह गया।

शमशेर को उस पर यों ही क्रोध आ गया—"भाग यहाँ से और छोटी बीबी से कह देना कि वह जहन्नुम में जायँ।" वह छोटा पहाड़ी नौकर डर कर वहाँ से भाग गया और शमशेर ने कमरे के किवाड़ लगा दिए।

लेकिन शमशेर अपने आप को उन तमाम चीज़ों से मुक्त कैसे कर सकता था जिनसे एक बार उसका नाता जुड़ चुका था। जब तक आदमी ज़िन्दा रहता है तब तक वह सिर्फ़ किनारे पर ही खड़ा नहीं रह सकता—उसे ज़िन्दगी की धार के साथ बहना होगा। और इस समय जब शमशेर यह चाहता था कि वह दुनिया की हर चीज़ से किनारा काट ले—स्वयं ज़िन्दगी से भी मुँह मोड़ ले—फिर भी वह अपने दिमाग़ को उन जा-जाकर लौटती हुई लहरों की टकराहट से बचा नहीं सका। कम-से-कम और कहीं न सही तो उसे अपने काम पर तो जाना

ही चाहिए, उस काम के लिए तो उसे रुपए मिलते हैं और रुपया खाने के लिए ज़रूरी है—खाना ज़िन्दगी के लिए और रुपए—खाने और ज़िन्दगी का यह सबक़ दोहरा कर उसके दिल के ज़ख्म में फिर से 'मवाद' भर आया। रुपए ने दुनिया की हर चीज़ ख़रीद रखी है—उसको—उसके समय को—उसके प्यार को—ताजो को—ताजो के रूप, शरीर, यौवन, उसकी इज्ज़त को। ज़हर से उसका मन कड़ुवा हो गया—वह भी तो उनमें से है जिसे दुनिया ने ख़रीद रखा था—फिर गिला किस बात का! और शाम को सही वक्त पर शमशेर बाबू गिरजा दयाल के यहाँ पहुँच गया—अपनी ड्यूटी अंजाम देने के लिए।

"ओह मास्टर साहब! आप आ गए—क्या हो गया था आपको?" मोहनी ने आज बहुत दिनों बाद शमशेर को देखा था और इन बहुत दिनों में उस पर न जाने क्या-क्या गुज़र चुका था—न जाने कितनी बार तड़प उठी थी वह—न जाने कितनी बार इच्छा की उत्तेजना से उसका कुँवारा दिल फड़क उठा था और ख़ामोश हो गया था एकाकीपन की चट्टानों से टकरा-टकरा कर।

"आप आए क्यों नहीं मास्टर साहब! आपकी बड़ी याद आई इतने दिन!" मोहनी के आँखों में सुर्ख़ शरबत के फ़व्वारे छूट रहे थे। आँखों के अन्दर से उमड़ते हुए उस सैलाब को देख कर शमशेर घबड़ा गया।

"बाबूजी—माताजी—शामू—सब कहाँ हैं—मोहनी?"

"बाबूजी और माताजी तो कीर्तन में गए हैं—मास्टर साहब और शामू—वह कहीं इधर-उधर खेलने चला गया होगा। हमें मालूम न था कि आप आज आएँगे।"

आँखों में उमड़ती हुई शराब थोड़ा और लाल हो गयी—साँसें थोड़ी और गहरी हो गयीं—सीने पर पड़ा हुआ बारीक दामन थोड़ा ज़्यादा गिर गया नीचे अन्दर उबलती हुई उत्तेजना की वजह से।

शमशेर उस आग से डर गया जो मोहनी की आँखों में थी—उसका गला सूखने लगा।

"मैं....मैं जा रहा हूँ....मोहनी!"

"आज....आज नहीं, मास्टर साहब! इतने दिनों बाद तो आप आए हैं।"

शमशेर उठने लगा—मोहनी को लगा जैसे शमशेर उसके जीवन से ही बिल्कुल चला जायगा अगर उसने इस मौके को यों ही चला जाने दिया। शमशेर के गले में उसने अपनी गोरी-सुडौल बाँहें डाल दीं—एक मिनट को शमशेर इस बात से अवाक् रह गया और उस एक मिनट में मोहनी के अन्दर उसकी कुँवारी उत्तेजना के हज़ारों सोते फूट पड़े और उसका शरीर तड़प गया उस नए अनुभव से। उसके होंठ शमशेर के होंठों के बिल्कुल करीब आ गए, और उसकी गर्म साँस ने शमशेर के गालों की नाज़ुक खाल को जैसे जला दिया।

शमशेर एकदम सचेत हो गया—उसने बलपूर्वक मोहनी को धक्का दे दिया और पिसे हुए दाँतों के बीच से सिर्फ़ एक शब्द निकला नफ़-रत से भरा हुआ—"नागिन।"

बाँहों का पाश टूट गया—खिलने वाले अरमान अधूरे रह गए, जैसे बढ़ती हुई आग से किसी ने लपटें छीन ली हों। अपमानित मोहनी—जिसके दिल के अन्दर खिलते हुए गुलाबों को शमशेर की बेरुख़ी ने कुचल डाला था—अस्तव्यस्त, हक्की-बक्की पड़ी थी। ऐसा होगा यह मोहनी ने ख्वाब में भी नहीं सोचा था—सपनों में तो उसने शमशेर को प्रेमी के रूप में देखा था जिसकी छेड़-छाड़ से उसके मन में गुदगुदाहट की लहरें दौड़ने लगती थीं। लेकिन यह क्या हुआ? यहाँ तो सपनों का पूरा रंगमहल चकनाचूर हो गया और हज़ारों कणों में बिखर गया।

मोहनी—नादान, बेवकूफ़ और अभागी मोहनी—क्या समझ पाती शमशेर के दिल में रोती हुई पीड़ा को और शमशेर जिसके लिए उसके

अपने ही ग़म पहाड़ थे वह भी क्या और कैसे समझ पाता पहली-पहली जवानी में भटकी हुई मध्यवर्ग की उस सीधी-सादी लड़की के दिल के अन्दर उगते हुए टेढ़े-मेढ़े अरमानों को जिनकी सृष्टि स्कूल के पेड़ की छाहों में हुई थी। शमशेर रुक कर सोचता भी क्यों मोहनी की मजबूरियों को—उन ग़लत परम्पराओं के बारे में जिन्होंने एक जवान, अच्छी लड़की के दिल और दिमाग़ को दूषित कर दिया था—वह मोहनी को वैसी ही छोड़कर तेज़ी से कमरे के बाहर चला गया।

* * *

ताजो को जब चेतना लौटी थी तो उसने तेल की कमी से लपलपाती हुई लालटेन की लौ में अपने सीने पर पड़े हुए वह तीन नोट देखे थे जिन्हें शमशेर छोड़ गया था। वह धीरे-धीरे उठी और कुछ सोच कर पहले उन तीनों नोटों को छाती से ज़ोर से चिपका लिया और फिर बहुत कस के उन्हें चूम लिया।

और उस गंदे बदबूदार तंग कमरे की तन्हाई में ताजो बोल पड़ी :

"मेरे मालिक। आज तुमने भी मुझे इस क़ाबिल समझ लिया! पर मैं मजबूर थी—तुम्हारी अपनी ताजो बिल्कुल मजबूर थी—वह बदनसीब तो एक मामूली सी तवायफ़ है जो तुम्हारे प्यार के नाक़ाबिल है। अपनी मजबूरियों के लिए मैं यह शरीर बेच रही हूँ पर अगर आत्मा कुछ है तो वह तुम्हारी है—हमेशा तुम्हारी ही रहेगी। मुझे शर्मिन्दगी है, मेरे देवता, कि तुम्हारे लिए मेरा प्यार इस गंदगी में पैदा हुआ और बढ़ेगा पर वह कभी मरने न पाएगा—उसे कोई चीज़ मार न सकेगी।"

और उसने लाचारी से इधर-उधर देखा जहाँ उसकी बात कोई नहीं सुन रहा था और लालटेन की बत्ती आख़िरी बार उठी और फिर लालटेन बुझ गयी। कोठरी में एक विस्तृत विशाल अँधेरा छा गया।

* * *

ज़िन्दगी ने भी शमशेर के साथ एक ही मज़ाक किया था। मुद्दतों से वह ज़िन्दगी के रेगिस्तान में बेआसरा चला आ रहा था—उसने कभी झूठ को भी न सोचा था कि वह समाज के सिकुड़े हुए दामन की तरफ़ हाथ बढ़ाए क्योंकि पहले तो उन दामनों का साया उस जैसों को मिलता ही नहीं और फिर उस साए के बदले में आदमी को अपना बहुत कुछ कुरबान कर देना पड़ता है—उसे उस दामन की आड़ में इस हद तक छिप जाना पड़ता है कि उसका पूरा व्यक्तित्व ही उसमें ढँक जाता है। और शमशेर ने यह कभी गवारा नहीं किया था कि वह खो दे अपने आप को और इसीलिए न कभी उसे प्यार मिला था—न सहारा—न नौकरी—न सुख। उसने यह सब कभी सोचा ही नहीं था। उसे ज़िन्दगी में तकलीफें तो अनगिनती मिली थीं लेकिन वह इस सब पर कभी दुखी नहीं हुआ था—उसने कभी आँसू नहीं बहाए थे—आहें नहीं भरीं थीं —सिसकियाँ नहीं भरीं थीं।

सुख हमेशा अपने सिवा किसी दूसरे पर निर्भर रहता है—कम से कम सांसारिक सुख। आदमी अपनी खुशियों का रंगमहल किसी दूसरे की इच्छाओं पर खड़ा करता है। दूसरे की इच्छाएँ हमेशा उस व्यक्ति की आशाओं और उसके अरमानों का साथ नहीं दे सकतीं क्योंकि वह स्वतन्त्र हैं—उन दूसरों की अपनी-अपनी, अलग-अलग प्रवृत्तियाँ हैं—आशाएँ हैं—वहम हैं और हर आदमी दूसरे आदमी से बँधा है और वह दूसरा किसी और दूसरे से लेकिन फिर भी सब स्वतंत्र हैं। इसलिए सारा सुख महज़ मन का एक भ्रम है। जब वह भ्रम—वह तिलस्म टूटता है और जादू ख़त्म होने लगता है तो ख़ुशियों की मीनारें ढह जाती हैं—वह सब्ज़ बाग पलक मारते-मारते मुरझा जाते हैं और आदमी अपने आप को फिसलती हुई रेत की चट्टानों पर अकेला खड़ा पाता है; डोलती हुई मझधारों में अपने आपको अकेला पाता है और उसकी कश्ती में पतवार नहीं होते और कोसों तक उसको किनारा नज़र नहीं आता। फिर घबरा कर उसकी आँखें पुरनम हो जाती हैं

और बेमोल मोती से आँसू सीप के झुरमुटों में से बेकार ताकते रह जाते हैं। उस वक़्त भी आदमी अपने दुखते हुए सिर को किसी के सीने पर टेक देना चाहता है ताकि उस सीने की हमदर्द धड़कनों का मधुर संगीत उसे लोरियाँ गा कर सुला दे और वह भूल जाय ज़िन्दगी की भयानक कशमकश को और उसे पागल बना देने वाले शोरोग़ुल को। लेकिन तब तो वह सीना भी नहीं होता जिस पर वह अपना सर टेक दे—वह आँचल भी नहीं होता जो उसके मोती से आँसुओं को समेट ले। वह मोती ख़ाक में मिल जाते हैं और अकेली आत्मा अपने सूने-पन में छटपटाती रह जाती है। बस अकेला इन्सान होता है और चारों तरफ़ एक विशाल-विस्तृत रेगिस्तान जिसमें उसे क़दम गड़ा कर चलना पड़ता है।

शमशेर को वह भ्रम कभी नहीं हुआ था। माँ की मौत के बाद से किसी ने भी उसके तपते हुए माथे को नहीं चूमा था—किसी ने उन तलवों को नहीं सहलाया था जिन पर गर्म रेत ने फफोले डाल दिए थे। किसी भी भावना का आभास उसकी विरोधी भावना के द्वारा ही हो सकता है और क्योंकि तकलीफ़ के साथ उसे सुख नहीं मिला था, इस-लिए शमशेर ने वह तकलीफ़ भी कभी महसूस नहीं की थी।

लेकिन जब रामसिंह से और उसके बाद ताजो से शमशेर की जान-पहचान हुई तो शमशेर के थके हुए दिल ने उनका स्वागत किया था। रामसिंह से उसे भाई और पिता का सा स्नेह मिला था और एक सही दोस्त की मैत्री और समझदारी। और ताजो……ताजो से उसे ज़िन्दगी के अमृत का दान मिला था, ताजो के शरीर के स्पर्श मात्र से मानो वह सब बाँध खुल गए थे जिन्होंने प्यार के, उत्तेजना के, ज़िन्दगी की रंगीनियों के, सौन्दर्य के सहस्रों सोए हुए सपनों के और अरमानों के सैलाबों को क़ैद कर रखा था। जब ताजो का जवान, मुलायम, मज़बूत, गर्म धड़कता हुआ शरीर उसकी बाँहों में होता था तो शमशेर को लगता था कि जैसे ज़िन्दगी उसके आग़ोश में समाई

हुई है। और हुआ यह कि जो पंछी एकाकीपन की बर्फीली दीवारों के पीछे बन्द था और जिसके पंख उस घुटन और ठंडक की वजह से कड़े पड़ गए थे, सिकुड़ गए थे, वह आज़ाद हो गए—फैल गए जब दो शरीरों, दिलों और आत्माओं के महामिलन की गर्मी से वह बर्फ़ की दुर्भेद्य दीवारें पिघल कर ख़त्म हो गयीं। और वह शमशेर, जिसने सुख के लजीले—घूँघट के उस पार कभी झाँका भी नहीं था, अब उसी सुख को स्वाभाविक समझ बैठा—उस पर अपना अधिकार समझने लगा। लेकिन क़िस्मत के थपेड़े, या परिस्थितियों के तूफ़ान किसी का लिहाज़ नहीं करते—वह तो मौत की तरह अजेय उठते हैं और बस बरबाद करके ही दम लेते हैं। क़िस्मत का पहला ही झोंका राम-सिंह को अपनी गोद में बटोर कर ले गया था और साथ में उड़ा कर ले गया था—वह स्नेह, हमदर्दी, समझदारी जिस पर शमशेर ने सहारा लेना शुरू कर दिया था। और उसके बाद तो परिस्थितियों के कुछ ऐसे ग़ुबार उड़े थे कि जो कुछ बाक़ी था वह भी अट्टहास करते हुए तूफ़ान की बाँहों में तड़पता हुआ शमशेर की ज़िन्दगी से चला गया था।

मोहनी—नादान, मासूम, मोहनी—जो अपनी सिकुड़ी हुई तँग दुनिया के दूषित वातावरण में बरबाद हो गयी थी अपनी उम्र के लाखों करोड़ों लड़के-लड़कियों की तरह। इन्सान ने अपनी 'जीनि-यस्' के मद में डूब कर जिस समाज को बना-सँवार कर खड़ा किया था वह वास्तव में एक अजगर था जो अपनी ख़ूनी दाढ़ों के बीच उन्हीं के मासूम बच्चों को दबाए जा रहा था। पागल मोहनी नादान जवानी के धोखे में क्या कर बैठी थी? समाज ने शायद शमशेर से बदला लेने के लिए उसी को अपने प्रतिकार का माध्यम बनाया हो। जो भी हो स्कूलों में पढ़ाई हुई और समाज के तौर-तरीक़ों से पली हुई मोहनी को उसी सभ्यता और संस्कृति ने बर्बाद कर दिया था। काश मोहनी वैसी न होती जो वह बन गई थी, तो शमशेर का वह लगा हुआ काम ही क्यों ख़त्म होता?

और ताजो ! तूफ़ान का वह झोंका तो सच बड़ा बेरहम निकला था और शमशेर का शरीर तो क्या उसकी आत्मा भी तिलमिला गयी थी उस मार से। जब ताजो का प्यार उसके दिल में समाया था तो उसे लगा था कि शरबत की उन्मत्त लहरों ने ज़िन्दगी की कड़ुवाहट को बिल्कुल धो डाला है; रौशनी की कुछ ऐसी बाढ़ आई है कि जिसने अँधेरे को हस्ती की आख़िरी हदों के भी बाहर निकाल फेंका है, कल्पना के आसमानों में रंगीन शराब ने फाग मचा डाला है, शबनम के झीने कुमकुमों से असंख्य सतरंगी फुहारें छूट पड़ी हैं और प्यार की—दिल को कँपकँपा देने वाले और आत्मा को स्वर्ग तक पहुँचा देने वाले प्यार की—मधुर वंशी के कुछ ऐसे मदहोश सुर फूट पड़े हैं कि बहारों पर भी नयी बहारें छा गयी हैं और ज़िन्दगी ने एक जगमगाती मुस्कराहट ओढ़ ली है।

उत्तेजना की झनझनाहट से काँपता हुआ ताजो का शरीर जब रात के घने अँधेरे में शमशेर के शरीर से जुड़ जाता था और ज़िन्दगी की बलबलाती हुई धार एक शरीर से दूसरे शरीर में, शरीर की सीमाएँ तोड़ कर जाने लगती थी तो शमशेर चाहता था कि वह अपना पूरा शरीर, अपनी पूरी हस्ती को उस धार के साथ ताजो के शरीर में चला जाने दे। और वास्तव में शमशेर जो पहले था वह अब नहीं था क्योंकि उसका वह मज़बूत, बलवान, कठोर, मुक्त 'अहम्' द्रवित होकर ताजो के व्यक्तित्व में समा चुका था। ज़िन्दगी की तमाम कठोरता से ज़्यादे मधुर प्यार मिला था उसे—अब उसे कठोर चट्टानों का तकिया लगा कर रातें गुज़ार देने की ज़रूरत नहीं थी; अब तो किसी के वक्ष की मख़मली-मुलायम ऊँचाइयों पर सिर टेक कर वह काली-काली सर्द रातों में भी रंगीन और जानदार सपने देख सकता था।

ताजो के उस प्यार ने शमशेर को वक़्त और ज़माने के गरजते हुए तूफ़ानों से निकाल—बचा कर ज़िन्दगी की चमचमाती हुई रंगीन वादियों में खड़ा कर दिया था और उन वादियों की सदा मुस्कराती हुई सुनहरी

धूप में शमशेर और ताजो के प्राणों के पंछी ज़ोर से चहचहा उठे थे। शमशेर और ताजो को वह मुस्कराती हुई घाटियाँ अनन्त मालूम पड़ती थीं और लगता था कि जैसे इन दो जवान दिलों के प्यार भरे तराने हमेशा-हमेशा तक उन घाटियों में गूँजते ही रहेंगे।

लेकिन आसमान स्याह हो गया मजबूरियों के मनहूस अजगरों की फुफकारों से। आख़िर ज़िन्दगी की उन जागती हुई घाटियों और मौत के काले बियाबानों के बीच सिर्फ़ एक झीनी-सी दीवार ही तो है—परिस्थितियों का चंचल दामन ही तो है जो सुख के स्वर्ग को दुख के नरक से अलग करता है। और ख़ास तौर पर ताजो और शमशेर जिस वर्ग के थे—समाज और क़िस्मत के ठुकराए हुए, परिस्थितियों के वहम के कठपुतले—उन पर तो उन बेरहम तूफ़ानों का ज़्यादा असर हो सकता था और अपनी मौत की सी ज़िन्दगी से घबरा कर अगर वह ज़िन्दगी की जवान घाटियों में भटक भी आए थे तो क्रोधी पिता की तरह उन तूफ़ानों ने उन दोनों नटखट बच्चों को डाँट कर बाहर घसीट भी लिया था। और उन काले और भयानक तूफ़ानों में—शमशेर और ताजो दोनों जिसके आदी थे—एक बार साथ रह कर, हँस बोल कर, वह दोनों जुदा होकर दूर-दूर जा गिरे थे और इस बार उन्हें ऐसा लगा था कि जैसे एक शरीर के दो टुकड़े करके, दोनों तड़पते हुए भागों को अलग-अलग फेंक दिया गया हो। और सचमुच ऐसा हो भी गया था क्योंकि शमशेर और ताजो के शरीर और आत्मा एक हो गए थे।

शमशेर के दिल को इस सबसे ज़बरदस्त धक्का लगा था। वह तो ताजो को एक महान नारी—ज़िन्दगी और प्यार की देवी समझता था लेकिन वह भी मोरी का कीड़ा ही निकली जो महकते हुए बाग़ों में ख़ुश और आज़ाद नहीं रह सकता—जिसके भाग्य में ही यह है कि वह अपने गन्दे माहौल की दुर्गन्ध में सड़-सड़ कर जिए। कितनी भयानक भूल की थी उसने—वह भूल गया था उस नक़ली प्यार के नशे में कि ज़िन्दगी शहद नहीं, ज़हर है—कि दुनिया में रहने वाले लोग प्यार

नहीं, नफ़रत—केवल नफ़रत-कर सकते हैं। वह कितना डरपोक था कि छाँह ढूँढ़ने की कोशिश कर रहा था—वह कितना मूर्ख था कि समझने लगा था कि ज़िन्दगी मुस्कराहटों और क़हक़हों की है और फिर उसने एक औरत पर भरोसा किया था—वह उसी सज़ा के क़ाबिल था जो उसे मिल रही थी।

शमशेर बेचारा क्योंकर समझ पाता कि किन मुसीबतों ने, मजबूरियों ने, ज़िन्दगी की किन भयानक असलियतों ने उनके जुड़े हुए दामन झटके से तोड़ कर अलग कर दिए थे। अपनी ज़िन्दगी की उन भयानक परिस्थितियों के बीच ताजो बिल्कुल बेबस थी। भूख और लाचारी उसके, उसके माँ-बाप के, उसके भाई-बहनों के, उसके पूरे वर्ग के शत्रु थे। उस शत्रु से ताजो को लड़ना था—किसी भी हालत में, किसी भी तरह से लड़ना था—लड़ते रहना था। प्रेम तो उस जैसों के लिए नहीं था—उनके लिए तो वह एक भूल है—ग़लती है; मुहब्बत सिर्फ़ अभिजात वर्ग और फ़ुर्सत के लिए दिलोदिमाग़ की ऐय्याशी है क्योंकि उनके लिए तो ग़मे इश्क के सिवा कोई दूसरा ग़म नहीं और यहाँ ताजो को अपनी दुनिया में ग़म कुछ इतने हैं कि उसमें ग़मे इश्क की कोई गुन्जायश ही नहीं। और फिर शमशेर को भी वह इस दलदल में घसीटती तो शमशेर के लिए नतीजा अच्छा नहीं होता। ताजो को अगर प्यार करने का हक़ नहीं था तो यह हक़ तो ज़रूर था कि वह शमशेर को ज़िन्दगी में खुश और आज़ाद देखने की तमन्ना करे।

और इसलिए प्रेम की मधुर और पवित्र दुनिया को छोड़ कर जब ताजो रंडी के कोठे पर फिर वापस आई तो उसका दिल जो हाल में ही पैदा हुआ था, टूट कर असंख्य कणों में मामूली धरती पर बिखर गया और पेट की ख़ातिर, मजबूरियों और परिस्थितियों की ख़ातिर प्रेम की देवी बाज़ार की तवायफ़ बन गई।

और हालाँकि शमशेर यह न जानता था कि ताजो पर क्या गुज़रा है फिर भी वह अपनी तकलीफ़ों से सहम कर हताश हो बैठा था और वह

कड़ुवा सत्य धीरे-धीरे उसके दिमाग़ में भिद रहा था कि उसके बेआसरा जीवन में जो सहारे क्रूर भाग्य ने ला फेंके थे वह अब ग़ायब हो रहे थे और एक बार उसका जीवन फिर वही होने जा रहा था, जो पहले था।

* * *

मोहनी को धक्का देकर—अपने लगे हुए काम पर लात मार कर, जब से शमशेर घर लौटा था तब से तीन दिन हो चुके थे और उसने तब से अपने कमरे का दरवाज़ा नहीं खोला था। उधर ताजो भी उस दिन से अजीब-अजीब सी हो रही थी, जब शमशेर—उसका प्रेमी शमशेर—तीस रुपए फेंक कर चला आया था उसका शरीर लेने के बदले में। लेकिन ताजो को उसके बाद की बातें नहीं मालूम थीं। गली के लोग शमशेर को पसन्द तो बहुत करते थे लेकिन उनकी यह हिम्मत न थी कि शमशेर से जाकर यह पूँछते कि उसको हुआ क्या है—क्यों वह तीन-चार दिन से कमरा बन्द किए हुए पड़ा हुआ है?

बेला से न रहा गया तो वह ताजो के कोठे पर जा पहुँची।

"बड़ी अभागिन है तू! तेरे हाथ में एक बार दुनिया की दौलत आ गई और मूरख कहीं की, तू उसे लात मार कर चली आई। कितनी भाग्यवान थी तू कि इस गन्दगी से निकलने की तुझे एक राह मिली थी और तूने उसे अपनी नादानी से बन्द कर दिया। ऐसा क्यों किया तूने ताजो—तूने ख़ुशियों का महल छोड़ कर यह कोठा फिर क्यों आबाद किया?"

"पुरानी बातें छोड़ो—बेला बहिन! किस्मत यह नहीं चाहती—ज़माना यह नहीं चाहता...." दर्द की घाटियों में से गुज़रते हुए लफ़्ज थम-थम कर, कराह-कराह कर निकल रहे थे ताजो के गले से। बेला ने ताजो का जुमला पूरा न होने दिया :

"अरी, ख़ाक डाल ज़माने पर और क़िस्मत पर। तुझे कुछ मालूम

भी है कि शमशेर बाबू पर क्या गुज़र रही है। चार दिन से बिना खाए-पिए बुख़ार में पड़े है....”

मजबूरियों के अन्धेरे में से प्यार की चिनगारियाँ फिर से भड़क उठीं और दिल की आवाज़ चीत्कार कर उठी—“शमशेर !”

ताजो के बँधे हुए क़दम आज़ाद हो गए और वह अपने शमशेर से मिलने के लिए भाग पड़ी। बेला बहुत ख़ुश हुई अपनी—जीत पर।

ताजो ने दरवाजे पर दस्तक दी—बेचैनी से, बेताबी से, बेक़रारी से—जैसे ज़िन्दगी से बिछड़ा हुआ ज़िन्दगी को फिर से पा लेने की कोशिश कर रहा हो। अन्दर कमरे के अँधेरे में शमशेर लेटा था—भूखा, परेशान—उसकी दाढ़ी बढ़ी हुई थी—उसका माथा बुख़ार से तप रहा था। वह चाहता था कि उन दीवालों से टकरा कर अपना सर फोड़ ले। दरवाज़े पर दस्तक जारी थी—शमशेर ने उठ कर दरवाज़ा खोल दिया।

सामने ताजो खड़ी थी—उसके दिल की, उसके प्यार की, उसकी ज़िन्दगी की मलिका। “शमशेर”—थमे हुए बाँध उस उत्तेजना में टूट गए—ताजो क भूखी बाँहें शमशेर के भूखे शरीर की तरफ़ बढ़ गईं—एक गहरी साँस भर कर शमशेर उन बाँहों में छिप गया और ताजो के आँसुओं ने शमशेर के सूखे भूरे बालों को गीला कर दिया। उन उभारों पर आज बहुत दिनों के बाद शमशेर का सर फिर से टिका था। थोड़ी देर को दोनों बेसुध हो गए और एक दूसरे के दिल एक दूसरे से सट कर ज़ोर से धड़क उठे।

ताजो ने शमशेर का मुँह ऊपर उठाया—उसके सूखे हुए होंठ उसके होंठों की प्रतीक्षा कर रहे थे। शमशेर ने ताजो के प्यार के माधुर्य में नहाए हुए चेहरे को देखा—उसके दिल में कड़ुवाहट का ज़हर फूट पड़ा और नफ़रत उभड़ पड़ी। ताजो ने उसके दिल का, उसके प्यार का,

उसकी ज़िन्दगी का ख़ून किया था। एकाएक वह ताजो के आलिंगन को तोड़ कर अलग खड़ा हो गया।

"जाओ-भाग जाओ—चली जाओ यहाँ से। अब क्या है मेरे पास जिसे लेने आई हो।"

ताजो हक्की-बक्की खड़ी रह गई।

"सुना नहीं—भाग जाओ यहाँ से—तुम्हें देने के लिए मेरे पास पैसे नहीं हैं—कभी नहीं होंगे।"

"शमशेर?"—पीड़ा से कराह उठी ताजो।

"मैं सच कहता हूँ—मेरे पास कुछ भी नहीं है। और तुम—प्यार तो तुम्हारा पेशा है; मुझसे प्यार करके क्या लोगी तुम—तुम्हारा शरीर ख़रीदने के लिए मेरे पास चाँदी के सिक्के नहीं हैं और तुम—तुम क्योंकि तवायफ़ हो—रंडी हो—इसलिए तुम मुझे मुफ़्त क्यों दोगी अपना शरीर। मैं तुम से अपनी ज़िन्दगी के दिए जगमगाना चाहता था पर तुम तो नागिन हो—हर औरत नागिन होती है—इसलिए मुझे तुम से नफ़रत है—हर औरत से नफ़रत है....नफ़रत है....नफ़रत है......"

और उस मिनट तो यही दिखाई पड़ा कि शमशेर के चेहरे पर सचमुच नफ़रत है। ताजो सहम गई:

"त. . . .त. . . .तो . . .तुम्हें . . .स....च मुझसे नफ़. . .नफ़रत है?"

"हाँ! हाँ! कह तो चुका कि मुझे तुमसे, तुम्हारी ज़ात से, तुम्हारे पूरे समाज से नफ़रत है—तुम्हें देख कर घिन आती है। चली जाओ यहाँ से।" और शमशेर ने ताजो को कमरे के बाहर कर दिया।

ज़िन्दगी के तमाम किनारे टूट गए और मौत सब चीज़ों पर छा गई। बस मौत के कोहराम के बीच सिर्फ़ एक आवाज़ ताजो के दिमाग़ में गूँजती रही: "शमशेर तुझसे नफ़रत करता है—तुझसे नफ़रत करता है....नफ़रत. . . नफ़रत. . . नफ़रत! सारी दुनिया तुझसे नफ़रत करती है. . .सारा समाज तुझसे घृणा करता है. . .ज़िन्दगी तुझसे नफ़-रत करती है . . .तू अपने आप को नफ़रत करती है। तो फिर यह

ज़िन्दगी क्यों ?—यह दुख क्यों ?—यह ग़म और ये तकलीफ़ें क्यों ? आख़िर क्यों ? क्यों ? क्यों ? क्यों ?"

और ज़िन्दगी की ठुकराई हुई ताजो की आँखों में आँखें डाल कर मौत मुस्करा दी। मौत ने इशारे से उसे अपनी तरफ़ बुलाया—"मेरी बच्ची ! तू बहुत दुखी है। आ मेरे दामन में सिमट आ—और मैं तुझे थपका कर सुला दूँ ताकि फिर ज़िन्दगी के दानव तुझे न सता सकें !"

और ताजो ज़ोर से बोल पड़ी—"मैं आई ! मेरी माँ—मेरा इंतज़ार कर।" और पागल-सी हो कर वह अपने कोठे के ज़ीने की तरफ़ भागी। गली में चलने वालों की समझ में न आया कि ताजो को क्या हुआ ?

किसी तमाशबीन के क़दम शराब और वासना से लड़खड़ाते हुए ताजो के कोठे की सीढ़ियों पर चढ़े। कमरे में बदस्तूर एक लालटेन जल रही थी और कोने की चारपाई पर ताजो औंधी लेटी थी।

"अरे जाग भी उठो मेरी जान—अभी तो शाम है और फिर हमारी-तुम्हारी शाम तो अब शुरू होगी। हूँ ! सुनती नहीं—मैं जगा दूँ अपनी छमिया को—उठ भी जाओ। यह तुम्हारे काले घुँघराले बाल (उसने बालों को चूम लिया) यह तुम्हारी प्यारी गर्दन—यह तिल, हूँ ! फिर नहीं उठीं ! क्या नींद है। अच्छा इधर रुख़ तो पलटो, देखो हम कितने बेताब हैं। एक गहरी डरी हुई, लम्बी चीख़ शराबी के मुँह से निकल पड़ी।

पैसे के बल पर औरत के जिस्म से खेलने वाले को यह न मालूम था कि वह एक मुर्दे से प्रणय क्रीड़ा कर रहा था—ताजो के सीने में एक लम्बा छुरा लगा था और उसकी चोली ख़ून में तर-बतर थी।

थोड़ी देर को डर के मारे उस आदमी के मुँह से कोई आवाज़ ही न निकली लेकिन फिर वह चीख़ता हुआ दरवाज़े के बाहर निकल कर भागा। आस-पास के आदमी-औरतें जमा हो गए और ऊपर ताजो के कमरे की तरफ़ भाग पड़े। ज़मीन पर एक कागज़ का टुकड़ा पड़ा था जिस पर टूटी-फूटी भाषा में लिखा था :

"मैंने ख़ुद अपनी जान ली !"

मौत में भी ताजो बहुत हसीन लग रही थी। उसके रेशमी घुँघराले बालों पर अब भी चमक थी—उसके चेहरे पर अब भी ज़िन्दगी की मुलायमियत थी—बस उसकी वह दो शरबती आँखें बन्द थीं कुछ ऐसे कि मानों दो मदभरे गुलाबों को रात के स्याह आँचल ने ढँक लिया हो। उसके उभरे हुए वक्ष वैसे ही जानदार मालूम पड़ते थे, बस ख़ून बिखरा पड़ा था—उसके कपड़ों पर। शायद उसके जिस्म में ज़िन्दगी की शराब न समा पाई और छलक पड़ी। मौत के वीरानों में खोई हुई ताजो अब भी ज़िन्दगी की देवी दिखाई दे रही थी। हर आदमी और औरत की आँखों में बड़े-बड़े आँसू डबाडबा कर बह पड़े पर शायद ताजो के चेहरे की मुस्कराहट उनसे यह कह रही थी :

"ग़म क्यों करते हो मेरे मरने का ! मौत ही तो हमारे लिए ज़िन्दगी है। अब मेरा शरीर कोई नहीं ख़रीद पाएगा; अब मुझे कभी भूख से नहीं लड़ना होगा। और शमशेर—शायद वह भी मुझसे अब नफ़रत न करे।"

शमशेर। रोती हुई बेला ने शमशेर के किवाड़ पीट डाले। बेला को रोती देख कर शमशेर बोला—"क्या हुआ, बेला बहिन ?" और बेला उसका हाथ पकड़ कर खींचती हुई उसे ताजो के कमरे में ले आई।

"ताजो !" शमशेर चीख़ पड़ा, "ताजो यह क्या किया तूने ? मुझे माफ़ कर देना ताजो—मैंने तुझे बिल्कुल ग़लत समझा था—माफ़ कर देना मुझे।" शमशेर की आँखों में आँसू नहीं थे मगर आवाज़ में थे—दिल में थे। शमशेर झुका और उसने ताजो के होंठों को कस के चूम लिया और इसके बाद बिना कुछ बोले वह कमरे से बाहर निकल गया—गली से निकल गया। एक बार फिर थका-हारा मुसाफ़िर अपने सब सहारे खो कर ज़िन्दगी की जलती हुई घाटियों में घुस गया।

भाग २

१

सितम्बर २, १६३६ ।

एक ज़लज़ला आ गया दिशाओं में घुमड़ते हुए तूफ़ान भड़क उठे, सभ्यता और संस्कृति की मीनारें लरज़ने लगीं, टूटने लगीं, ढहने लगीं और इन्सान जो मुद्दतों से ख़ामोश पड़ा था शान्ति के देवता की तरह—जाग उठा मौत का दानव बन कर। ज्वालामुखी का विस्फोट हुआ और सँकरी सीमाओं के अन्दर सड़ती हुई नफ़रत—व्यक्ति की व्यक्ति से नफ़रत, वर्ग की वर्ग से नफ़रत, एक देश की दूसरे देश से नफ़रत—छलक पड़ी और जलता हुआ लावा सारी दुनिया पर फैल गया।

इन्सानियत का कोढ़ फूट पड़ा था!

इंगलैण्ड और अमरीका अपनी पहली विजय के गर्व में मदमस्त थे। उनके नगरों में व्यापार उत्तरोत्तर वृद्धि कर रहा था—उन नगरों में सड़के जगमगा रही थीं—आलीशान मकान बन रहे थे—और उन नगरों और उन मकानों में रहने वाले ऐश्वर्य और सम्पन्नता के लाड़ले-लाल थे। वे सुखी थे—उनके बैङ्कों में धन था, उनके बाग़-बग़ीचों में बसन्त के मौसम में सुनहरे फूल खिल उठते थे। उन मुल्कों के नौजवान तन्दुरुस्त और सुखी थे—युवतियाँ, हँसमुख और जवान थीं और वे दोनों मिलकर ज़िन्दगी के एक नए और रंगीन स्वर्ग का निर्माण कर रहे थे। और जब यह सब होता है तो उनके आदर्श की कला और साहित्य सम्पन्न होते हैं और वे यह समझ बैठते हैं कि वे आज़ादी के रक्षक—शान्ति के देवता और संस्कृति के पुजारी हैं! और क्यों न हो? संघर्ष और वास्तविकता—ज़िन्दगी की कड़वी असलियत—उनसे कोसों-कोसों दूर होती है। वे रंगीन बहारों में मुस्कराते हुए

फूल कल्पना कर नहीं पाते खिज़ाँ में उजड़े हुए चमन की—लेकिन कितनी ही कोमल और दैवी कल्पना क्यों न सही—खिज़ाँ आती है और फिर आती है और उनकी कल्पना की वह हजारों बहारें उन्हें रोक नहीं पातीं।

और हालाँ कि चारों तरफ़ सिर्फ़ मख़मली पर्दे ही नज़र आ रहे थे फिर भी उन पर्दों के पीछे जो कोढ़ था—मौत का जो तांडव था—वह छिप कैसे सकता था।

पराजय के क़दमों से रौंदा हुआ जर्मनी बेइज्ज़ती और दर्द से तड़प रहा था। उसके नगर सुनसान थे—उनमें ज़िन्दगी की चहल-पहल नहीं थी—उनके घर वीरान थे और उनमें रौशनियाँ नहीं जगमगा रही थीं। उसके नौजवानों की आँखों में ज़िन्दगी का उमंग और जोश नहीं था—थकान थी, निराशा थी, उदासी थी। उनके तन्दुरुस्त शरीर निकम्मे थे क्योंकि वे आज़ाद नहीं थे और जो आज़ाद नहीं होते वे जवान नहीं होते, उनके सिर झुके होते हैं, उनके माथे पर शिकस्त होती है—तेवर और चमक नहीं; उनकी आँखों में ज़िन्दगी के दिए नहीं जगमगाते। और उनकी युवतियाँ जो जवान और ख़ूबसूरत थीं, जवान और ख़ूबसूरत नहीं थीं क्योंकि रूप के हसीन गुलाब सिर्फ़ आज़ाद हवाओं में ही मुस्कराते हैं। और वहाँ—उन देशों में मौत और ग़ुलामी और बरबादी की सड़ाँध थी और उस दुर्गन्ध में उन हसीनाओं की मुस्कराहटें घुट-घुट कर मर रही थीं। देश के तन्दुरुस्त नौजवान पिछली लड़ाई के मोर्चों पर गाजर-मूली की तरह कट चुके थे और इसलिए उनकी कमी थी और जो थे वह भी इतने थके-हारे कि वे अगर न होते तभी शायद अच्छा होता। सिर्फ़ नादान बच्चे थे—मरे हुए नौजवान और अपाहिज बूढ़े—उन हारे हुए देशों की नारियाँ बेवाएँ थीं क्योंकि उनके रूप के महलों में ज़िन्दगी के दिए जलानेवाला कोई नहीं था और न ही कोई उनके भूखे पेट को रोटी देने वाला। और इसलिए क्योंकि उन औरतों की आत्माएँ,

उनके शरीर, उनके पेट भूखे थे, और विदेशी विजेता की जेबों में रुपये भी थे और शरीर में उन्मत्त जवानी भी, इसलिए एक गिलास 'बियर' या एक वक्त के खाने के लिए वे जवान औरतें—जो किसी भी स्वतन्त्र देश में राष्ट्र की माताएँ होती हैं—वेश्याएँ बन जाती थीं।

लेकिन एक ऐसी भी हद होती है जिसके बाद कोई दूसरी हद नहीं होती और पतन के इस क्रम में वह हद आ चुकी थी। विजेता और शोषण करने वालों के क़दमों के नीचे गूँगी इन्सानियत कुचली जा सकती है—ज़ख्मी हो सकती है—रो भी सकती है मगर टूट नहीं सकती क्योंकि इन्सानियत संसार की सबसे बड़ी शक्ति है—सबसे पवित्र धर्म है और जो कुछ भी इसके ख़िलाफ़ खड़ा होता है वह सब नीचता है—अधर्म है—पाप है। और इस वजह से जर्मनी की आत्मा उस सब के ख़िलाफ़—भूख और ज़लालत के ख़िलाफ़—विद्रोह कर उठी और हालाँकि उस विद्रोह को सही रास्ता और सही रूप नहीं मिला फिर भी उन्होंने अपने कन्धों से ग़ुलामी का वह जुआ उतार फेंका।

विजयी राष्ट्र, जो सुख और चैन के आदी हो चुके थे, जो दूसरे मुल्कों की आज़ादियों को सिर्फ़ अपनी हविस का खिलौना भर समझते थे—वे थरथरा उठे क्योंकि इटली और जर्मनी के रौंदे हुए राष्ट्रों की नफ़रत मुसोलनी और हिटलर के व्यक्तित्वों के द्वारा ज्वालामुखी की तरह फूट पड़ी। भूखा शेर इस बात पर ध्यान नहीं देता कि वह क्या खाकर अपना पेट भर रहा है—वह हँसते-मुस्कराते मासूम बच्चों को चीर-फाड़ कर भी अपने उदर की व्यथा शान्त कर सकता है।

और नई जागी हुई जर्मन और इतालियन ताक़तों ने जब अपनी हदों के बाहर बढ़ना शुरू किया तो मजबूरन उनके दिलों के अन्दर समाई हुई नफ़रत ने यह नहीं देखा कि किसकी आज़ादी क़ुर्बान हो रही है—किसकी गोद सूनी हो रही है—किसके माथे का सिन्दूर पुछ रहा है—किसका घर उजड़ रहा है। बस, नफ़रत की पागल कर देने वाली शराब ने उन्हें मतवाला बना दिया था और जब उनके क़दम उठे थे

तो वे बस देशों को और आदमियों को अपने क़दमों के तले रौंदते हुए चले जाते थे।

इन्सानियत का कोढ़ सचमुच फूट पड़ा था और उस कोढ़ से ज़मीन का कोई भी भाग बच नहीं सका था। सारा यूरोप उस भड़कती हुई आग में जल रहा था—सारी दुनिया अपने आप को बरबाद करने के लिए कमर कस रही थी। इंगलैण्ड ने भी युद्ध की घोषणा कर दी थी और ग़ुलाम भारत को अपने पैसे से, अपने ख़ून से अपने मालिकों का साथ देना था।

* * *

शांत भारत का एक शांत नगर—जिसकी जनता अब तक इतनी शांत हो चुकी थी कि उसमें जीवन भी शेष नहीं रह पाया था और एक मुर्दे की ही तरह वह बेख़बर थी अपनी मजबूरियों से, विपत्तियों से, परिस्थितियों से। हिन्दुस्तान के लोग काफ़ी पहले उस अवस्था को पहुँच चुके थे जब आज़ादी या ग़ुलामी दोनों में से किसी का उनके लिए कोई मतलब नहीं था। वह इन्सानियत की उस सबसे छोटी श्रेणी को पहुँच चुके थे जहाँ इन्सानियत की ऊँची महत्त्वाकांक्षाओं और ऊँचे आदर्शों को ख़ामोश किया जा सकता है रोटी से और कपड़े से और धमकियों से। इसीलिए विदेशी हुकूमत की बुनियादें ठोस करने वाले वे हिन्दुस्तानी सुखी और सन्तुष्ट थे अपने बँगलों में, अपने सिल्क के सूटों से और अपनी पेन्शनों से और उनके कानों तक आज़ादी की दबी-दबी मगर ताक़तवर आवाज़ नहीं पहुँच पाती थी। आज़ादी की लड़ाई लड़नेवालों की पुकार का, उनकी तकलीफ़ों का, उनके ख़ून का उन पर कोई असर नहीं होता था। वह बस अपनी तंग और छोटी और गंदी दुनिया में नाली के कीड़ों की तरह फल फूल रहे थे।

मगर वही आदमी आज उस खुले हुए मैदान में सैकड़ों—शायद हज़ारों की तादाद में इकट्ठे थे। क्यों? क्योंकि जिस दुनिया को वे सुर-

क्षित समझते थे वह लड़खड़ा रही थी—डाँवाँडोल हो रही थी और जिन देवताओं को उन्होंने सर्वस्व और अजेय मान रक्खा था, वह डरे हुए थे—विचलित थे—मार खा रहे थे। उन्हें पूरी तरह तो नहीं मगर यह दबा-दबा सा अहसास हो रहा था कि उनके सरल विश्वासों की वे बुनियादें खोखली हैं। सारा ढर्रा बिगड़-सा गया था—सब कुछ तेज़ी से तबदील हो रहा था और वे बेजान लोग बिगड़ने के और तबदीली के बिल्कुल आदी नहीं थे—वे उससे वैसे ही डरते थे जैसे मौत से। और जो ताक़तें ऐसा कर रही थीं उनके खिलाफ़ लड़ने के लिए वे क़तई निकम्मे थे।

चीज़ों की क़ीमतें बढ़ रही थीं और उनकी वह मोटी-मोटी तनख़्वाहें—जिन्होंने उनकी आत्मा तक को ख़रीद रक्खा था—अब बिल्कुल नाकाफ़ी मालूम हो रही थीं। ज़िन्दगी के वे मामूली सुख जिन्हें वे सब कुछ ही मानते थे उनके हाथों से रफ्तार से निकले जा रहे थे। वे अब फल और मेवे नहीं खा पाते थे—वे अपने बच्चों को जी भर के दूध-मक्खन नहीं खिला-पिला सकते थे—उनके कपड़े अब उतने साफ़ नहीं होते थे। उनके दिल डर से थरथरा उठते थे इस आशंका से कि कहीं उनके ख़ूबसूरत घरों पर बम न धमक पड़ें। उनकी सतही मान्यताएँ मिट्टी में मिली जा रही थीं। पहले रहने के एक ख़ास 'स्टैन्डर्ड' को ज़िन्दा रहने की एक बुनियादी ज़रूरत समझा जाता था और वे अब यह देख रहे थे कि वे ढंग भी टूटते जा रहे हैं। वे झल्ला रहे थे अपनी कमज़ोरियों पर और उनके अन्नदाता मजबूर थे—मौन थे। चोट उनके पेटों पर लगी थी—वे तिलमिला उठे थे और उन्हें पता लग रहा था कि वह चोट कितनी असह्य होती है।

उन बौखलाए हुए हिन्दुस्तानियों को अब एक दूसरे जादू से फुसलाया जा रहा था। उनके अन्नदाता अत्याचारियों के ख़िलाफ़ लड़ाई लड़ रहे हैं इन्सानियत के झंडे बुलन्द रखने के लिए—शांति और स्वतन्त्रता को क़ायम रखने के लिए—पीड़ित जनता को सुरक्षित रखने

के लिए। उनका पक्ष प्रबल था क्योंकि वे नैतिक आदर्शों के लिए लड़ रहे थे और इस महान युद्ध में हाथ बँटाना हर इज़्ज़तवाले आदमी का कर्त्तव्य था। और उन बहादुरों को जो अपने आपको उन ख़िदमतों के लिए आगे बढ़ाएँगे उन्हें उन मामूली तकलीफ़ों से मुक्ति मिल जायगी—उन्हें रुपए-पैसे की कमी न होगी।

यह बात देश के भिन्न-भिन्न कोनों में ग्रामोफ़ोन रेकार्डों की तरह बड़ी-बड़ी तनख़्वाह पाने वाले अफ़सर कहते घूम रहे थे। देश के लाखों नवयुवकों को जिन्हें पढ़ने-लिखने के बावजूद नौकरियाँ नहीं मिल रही थीं उन्हें ये अफ़सर आदर्श और सुख का सब्ज़बाग़ दिखा कर युद्ध की देवी के लिए बलिदान कर रहे थे और उनके ख़ून को अपने ही देश में कमाए हुए रुपए से ख़रीद कर विदेशियों के हवाले कर रहे थे। आदमी की ज़िन्दगी बहुत क़ीमती होती है लेकिन सिर्फ़ उनके लिए जो उसकी क़ीमत समझ सकें। वैसे दूसरों के लिए आदमी तो सिर्फ़ एक खिलौना होता है जो मामूली तौर पर तोड़ा जा सकता है।

और वे नौजवान भी बेचारे करते तो क्या करते? उनके चारों तरफ़ सब कुछ काला था—अन्धेरा था—सुनसान था और ज़िन्दगी के क्षितिज पर उम्मीद कहीं दूर-दूर नज़र नहीं आ रही थी। जिस माहौल में वे पले और बड़े हुए थे वह टूट रहा था—ख़त्म हो रहा था—उनकी जेबों में सर्टीफ़िकेट और डिगरियाँ थीं लेकिन ढंग से लग जाने की कोई आशा नहीं थी। और इन बदक़िस्मत नौजवानों के लिए ज़िन्दगी की लड़ाई इतनी भीषण थी कि बेचारे समझ नहीं पा रहे थे कि वह आख़िर करें तो क्या? और इसलिए जब उनके सामने एक नया रास्ता खुला तो बिना देखेभाले वे उस दिशा में भाग पड़े और अनजाने में ही देश के हज़ारों नौजवान मौत की घाटियों में चले गए।

आज भी वैसा ही एक अफ़सर उस मैदान में जनता के सामने वही नक़्शे दोहरा रहा था—उनके भूखे पेटों के आगे वही सब्ज़बाग़ खड़े कर रहा था। और मौत-सी ख़ामोश हवा के ऊपर रिक्रूटिंग अफ़-

सर की आवाज़ आ रही थी :.......“और इसलिए इस जङ्ग में भाग लेना इन्सानियत के पक्ष को मज़बूत करना है क्योंकि इस लड़ाई में दुश्मन को पूरी तरह हरा कर हम आपके मुस्कराते हुए घरों को आबाद रखना चाहते हैं—आपकी खुशियों को अमर कर देना चाहते हैं। और उन भाइयों को—उन समझदार और बहादुर नौजवानों को जो ऐसे समय में हमारा साथ देंगे उन्हें हम पूरी तरह सन्तुष्ट रखेंगे—उन्हें हम........” और इसके बाद अफ़सर ने वह सब सुविधाएँ गिनाईं जो भरती होनेवाले सिपाहियों को मिलेंगी।

शमशेर ने गुज़रते हुए वे शब्द सुने थे। ज़िन्दगी की कड़ुवाहटों का आदी हो जाने के बाद उसकी आँखें इतनी खुल चुकी थीं कि वे उन सब्ज़बाग़ों को देख कर तरस नहीं सकती थीं। वह जानता था कि ये सब बेवकूफ़ नौजवान जो समाज की गन्दगियों की औलाद हैं सिर्फ़ अपनी मजबूरियों और नासमझी के कारण अपने आपको फ़िज़ूल मौत के हवाले कर रहे हैं और या उन दूर बैठी हुई शक्तियों के हाथ में कठपुतली बन रहे हैं जिन्हें दुनिया से कोई सहानुभूति नहीं और जो उन्हीं से उनके अपने भाइयों का ख़ून करवाएँगे—गले कटवाएँगे—उनके घर और खुशियाँ बरबाद कराएँगे। और इस तरह विपरीत सामयिक परिस्थितियों के कारण मासूम और बेक़सूर इन्सान एक दूसरे के ख़ून के प्यासे हो बैठेंगे—जानी दुश्मन हो जाएँगे।

शमशेर को उनकी इन मजबूरियों पर तरस आया, उसे दुख हुआ उनके इस दुर्भाग्य पर। लेकिन वह दुख और वह तरस क्यों? आख़िर वे ही लोग तो आज मुसीबत में पड़े हुए थे जिन्होंने उसे तमाम उम्र तकलीफ़ें दी थीं—जिन्होंने उसके दामन से बार-बार ख़ुशियाँ समेट ली थीं—जिन्होंने उसे पल भर भी सुख और सन्तोष की ठंडी छाँहों में बैठने का मौका नहीं दिया था। उसी समाज की नींवें तो आज थर-थरा रही थीं, जिसने उसे ठुकराया था और उसे दुतकारा था क्योंकि वे तब तक अपने झूठे आदर्शों की रेशम में लिपटे हुए थे लेकिन अब

वे पर्दे फ़ाश हो चुके थे और वे साफ़ तौर पर बेइन्तहा नीच और पागल नज़र आ रहे थे। और अगर इस पागलपन की वजह से वे एक दूसरे का नाश करने में लगे हुए थे तो यह तो ख़ुशी की बात थी। उस दुनिया का—उस समाज का नाश हो ही जाना चाहिए। शमशेर में नफ़रत की सारी कड़ुवाहट फिर से उमड़ पड़ी और ठहाका मार कर वह हँस पड़ा।

२

"आपका नाम ?"

"शमशेर !"

"शमशेर अ....."

"शमशेर !!"

"बस ! शमशेर !"

"जी हाँ !"

"आपके पिता का नाम ?"

"इसकी ज़रूरत ?"

"जी....जी...पर यह तो क़ायदा है !"

"मैं अपने पिता का नाम आपको नहीं बता सकता।"

बेचारा रिक्रुटिंग अफ़सर आजिज़ आ गया था शमशेर से—एक तो उस आदमी का नाम पूरा नहीं था और फिर वह अपने बाप का नाम बताने से भी इनकार करता है—अजब सिर फिरा है। हल्का-सा ग़ुस्सा भी आया लेकिन फिर ड्यूटी—फ़ौज के लिए ज़्यादा से ज़्यादा आदमी भरती करने थे। नहीं—नहीं—ऐसे काम नहीं चलेगा।

"देखिए ! आपको अपने पिता का नाम बताने में एतराज़ क्या है ?"

"एतराज का सवाल ही नहीं। मैं इस बात को क़तई ज़रूरी नहीं समझता और जिस बात को मैं ज़रूरी नहीं समझता उसे मैं नहीं करता !'

"अच्छा—जाने दीजिए। आप नाराज़ न हों!" फिर ख़ाकी वर्दी पहने हुए अफ़सर ने कुछ कागज़ और पलटे :

"आपने इंटरमीजिएट तो किया है न!"

"जी—हाँ!"

"अच्छा है साहब! बी० ए० करने से ज़्यादा ज़रूरी है कि इन आड़े दिनों में आप सही आदर्शों का साथ दें! और फिर बी० ए०—एम० ए० के बाद भी तो वही सौ-डेढ़ सौ की ही नौकरी तो मिलती है, वह भी शायद।"

शमशेर ने बड़ी घृणा से उस आदमी को देखा जो ख़ाकी वर्दी में अफ़सर बना बैठा था अपने कंधों पर अँग्रेज़ों की भारतीय सेना के कप्तान के सितारे लगाए हुए। शायद पहले यही आदमी कोई वकील या मास्टर या मामूली सा सरकारी नौकर रहा हो—मजबूरी ने उसको आज कसाइयों का ऐजेन्ट बना दिया था और वह आज अपने भाइयों को ही लड़ाई की भट्टी में झोंकने के लिए तैयार था—कल शायद वह उसी वजह से बन्दूक हाथ में थाम लेगा इन्सानियत का ख़ून करने के लिए—लहलहाते हुए, खड़े हुए खेतों को तहस-नहस करने के लिए।

लेकिन शमशेर को उससे—उसकी मजबूरियों से कोई हमदर्दी नहीं थी—उसे उन लोगों से घोर नफ़रत थी क्योंकि वे इतने कमज़ोर और बेजान थे—इतने मरे हुए कि समाज के मज़बूत ठेकेदारों के हाथ में वे मोम की तरह हो जाते थे। ज़रा-ज़रा सी धमकियाँ उन्हें बुरी तरह डरा देती थीं और अपने स्वार्थों की रक्षा करने के लिए उन दानवों के हाथों में वे बड़ी ख़ुशी से खेल जाते थे। तो आज अगर उनका नैतिक और आर्थिक पतन हो रहा था तो शमशेर आँसू क्यों बहाता—वह तो अपने दिल के वीरानों के अन्दर ही अट्टहास कर रहा था। जिस दुनिया को वह नफ़रत करता था वह दुनिया आज पागल हो गयी थी। आज उसके स्वार्थी वर्गों में ही दो पक्ष हो गए थे और दोनों एक दूसरे के

ख़ून के प्यासे थे। क्या यही वे इन्सान थे जो अपने आप को सभ्य—सुसंस्कृत मानते थे? आज सदियों पुरानी सभ्यता की दौड़ के बाद भी आदमी उतना ही असभ्य था—उसकी पाशविक प्रवृत्तियाँ उतनी ही तेज़ थीं; अन्तर केवल इतना ही था कि आदमी पढ़ा-लिखा होने के कारण अब अधिक नीच और स्वार्थी हो गया था। ज़्यादा भीषण तरीके जानता था आज वह प्रलय बरसाने के। और इन टूटती हुई मीनारों और ढहते हुए महलों पर शमशेर भी आज लात मारेगा ताकि उनका अन्त और जल्दी हो जाय। शमशेर का रोम-रोम चीख़ उठा उस समय एक महान पीड़ा से—एक महान सन्तोष से—एक महान सुख से—

"इस दुनिया का—इस समाज का—इस इन्सानियत का नाश होना चाहिए—मैं इसका नाश करूँगा!"

और शमशेर की आँखों के सामने एक के बाद दूसरे दृश्य अपने आप आने लगे—जलते हुए मकान, उजड़े हुए खेत, मरते हुए आदमियों की चीख़ों से काला आसमान, मरते हुए आदमियों के ख़ून से लथपथ ज़मीन। रेशम और अंगूर के खेत जल रहे थे और उसमें से मासूम बच्चों के मुलायम शरीरों के जलने की भयानक दुर्गन्ध आ रही थी। शमशेर को लगा कि उसके दिल के अन्दर बसी हुई भयानक नफ़रत से इतनी भयानक आग निकल रही है जो तमाम संसार में प्लेग की तरह अराजकता फैलाती चली जा रही है। शमशेर को लगा कि मिलिटरी के भारी-भारी बूट पहने हुए उसके क़दम उठेंगे और सारी दुनिया को—तमाम समाज को अपने क़दमों के नीचे रौंद डालेंगे।

लेकिन शमशेर को इस विचार से—इस भावना से कोई पीड़ा नहीं हुई—उसका दिल सहमा नहीं। इन्सान का दिल ऐसा नहीं होता—वह क़ुदरतन यह नहीं चाहता कि दूसरों के अधिकारों को छीन ले—दूसरों की ख़ुशियों को रौंद डाले—दूसरों की मुस्कराहटों पर स्याही पोत दे।

आदमी सिर्फ़ बहारों के बीच में ही फूला-फला रह सकता है—जलते हुए वीरानों में नहीं । और शमशेर भी इन्सान था—सब से पहले इन्सान लेकिन वह इस वक़्त ज़िन्दगी की बहारों में आग लगा देना चाहता था क्योंकि समाज ने—उस भद्दे, दूषित समाज ने उसे दुत्कारा था—रुला-रुला दिया था और अब उसकी नस-नस में इन्तक़ाम का ज़हर भर गया था—उसके दिल में प्रतिहिंसा की आग किसी भीषण ज्वालामुखी की तरह फूट पड़ने के लिए बे-सब्र हो रही थी । यह बद-क़िस्मती थी सारी दुनिया की—सारी इन्सानियत की—एक मासूम गुलाब में भी ज़हर भर गया था । समाज की गन्दगियों ने देवता को हैवान बन जाने के लिए मजबूर कर दिया था । .कुसूर शमशेर का नहीं था—.कुसूर तो उन तमाम परिस्थितियों का था जिन्होंने उसे वह बना दिया था जो वह वास्तव में नहीं था ।

"आप चुप हो गए—क्यों ?" रिक्रुटिंग अफ़सर ने शमशेर से पूछा ।

"जी कुछ नहीं !" शमशेर अपनी दुनिया में वापस लौट आया ।

"अरे साहब ज़माना बहुत ख़राब आ गया है लेकिन आप तो बड़े ख़ुशकिस्मत और समझदार हैं कि सेना में भरती हो रहे हैं और दुश्मन का सर कुचल देने में हम लोगों की सहायता कर रहे हैं ।" रिक्रुटिंग अफ़सर ने ख़ुश होकर कहा ।

शमशेर ने कोई उत्तर नहीं दिया । उसे मालूम हो गया कि उसे 'किंग्ज़ कमीशन' मिल गया है और वह ख़ुद थोड़े दिनों में अफ़सर बन जायगा—ख़ाकी वर्दी पहनने वाला अफ़सर जिसके कन्धों पर चमचमाते हुए 'स्टार' लगे होंगे । उसे अच्छी ख़ासी तनख़्वाह मिलेगी—उसकी लोग इज़्ज़त करेंगे, समाज—जिसने उसके सिर्फ़ अब तक लात ही मारी थी—उसका स्वागत करेगा—बड़ी ममता से उसे अपनी बाँहों में समा लेने की कोशिश करेगा । क्यों ? ऐसा क्यों होगा ? अब तक ऐसा क्यों नहीं हुआ ?

अब तक उसने बहुत मेहनत से ज़मीन पर अपने क़दम जमाने की कोशिश की थी—उसने चाहा था कि ज़िन्दगी के आम ढर्रे में वह भी अपनी मामूली-सी जगह पा ले। एक सुखी-सन्तुष्ट परिवार इन्सान के सुखों का चरम आदर्श है। जो शान्ति एक सुहावने छोटे से घर पत्नी और अपने बच्चे में है वह न दौलत में है, न सोने-चाँदी में, न ऊँचे-ऊँचे महलों में। इन्सान का वह छोटा-सा मुस्कराता हुआ घर—कला से, विज्ञान से, ज्ञान से—यहाँ तक कि भगवान से भी ऊँचा है। यह पा लेना शमशेर की कोई बहुत बड़ी महत्त्वाकांक्षा नहीं थी—एक मामूली सा शौक़ था लेकिन इस छोटी-सी इच्छा को भी समाज ने और ज़ालिम परिस्थितियों ने पूरा नहीं होने दिया था।

इन्सान को सबसे पहले प्यार की ज़रूरत होती है इसकी कि उसे कोई समझे। जब उसका माथा ज़िन्दगी की परेशानियों से तचने लगे तो कोई उसे सहला दे—उसकी वेदना से हमदर्दी ज़ाहिर कर दे—उसके दिल की आवाज़ को सुन ले। घर उसे यह सब दे सकता था लेकिन शमशेर को घर नहीं मिल सका था क्योंकि समाज की गन्दगी ने उसे बाग़ी बना दिया था। उसने जीवन में केवल एक बार प्यार किया था—वह भी अपनी जैसी एक लड़की से जिसे समाज ने दुत्कार कर अपनी हदों के बाहर कर दिया था। उस लड़की को ज़िन्दा रहने के लिए अपना शरीर बेचना पड़ता था—वह लड़की शमशेर को प्यार करती थी लेकिन कर नहीं सकती थी क्योंकि परिस्थितियों की चट्टानें उनके बीच पहाड़ बन कर खड़ी हो गयी थीं। शमशेर को समाज ने जलाया था—उससे उसके छोटे-मोटे सहारे भी छीन लिए थे और उसके दिल और दिमाग़ में फफोले पड़ गए थे। और, हालाँकि शमशेर आज अफ़सर बन गया था लेकिन वह अब उस हद को पार कर चुका था जब झूठी इज़्ज़त या पैसा उसकी आग को शान्त कर पाते—इसलिए वह सारी दुनिया को उस आग में भस्म कर देना चाहता था।

३

आग तेज़ी से धधक रही थी—युद्ध की देवी का तांडव अपने पूरे ज़ोर में था—लगभग सभी राष्ट्र पागल हो गए थे। एक संक्रामक रोग की तरह जर्मनी की जीत का क्रूर इतिहास एक देश से दूसरे देश में फैल रहा था—आज़ाद देश ग़ुलाम बन रहे थे—आज़ाद इंसान लड़ाई के मैदान में ख़ून से लथपथ गाजर-मूली की तरह कटे पड़े थे। अमरीका और इंगलैंड हिटलर के विरोध में अपना तथा अपने परतन्त्र राष्ट्रों का ज़ोर लगाए हुए थे। वे रातें जो कभी ख़ूबसूरत थीं आज डरी हुई इन्सानियत पर मौत बरसा रही थीं। हवाई जहाजों की चीख़ें—बमों के धड़ाके—जलते हुए मकानों की लाल डरावनी लपटें—मासूम घायलों की आहें—एक ख़ासा कोहराम मचा हुआ था। और हज़ारों, लाखों अनजान युवक पागलों की तरह मर रहे थे—मार रहे थे—लड़ाई जारी थी—विश्व का इतिहास लिखा जा रहा था—इन्सानियत के माथे पर ख़ून के बड़े-बड़े धब्बे छिटके हुए थे। शमशेर अपने कैम्प में क़हक़हे लगा रहा था।

पैरिस—साहित्यिकों और कलाकारों का पैरिस—युवक प्रेमी और प्रेमिकाओं का जवान पैरिस—शैम्पेन और अंगूरों का पैरिस—दुश्मन के क्रूर हाथों में बात की बात में चला गया। सभ्यता की मंजिलें बात की बात में ढह गयीं। पैरिस कभी यूरोप की सांस्कृतिक राजधानी थी—आज उसकी सड़कों पर जर्मन ट्रूपों के बूट रात की तारीकियों में गूँज रहे थे और सभ्यता और इन्सानियत का मज़ाक उड़ा रहे थे—छोटे बच्चे अपनी सहमी हुई माँओं की छातियों से चिपक कर हूक पड़ते थे। सारा यूरोप हिटलर की मुस्कराहटों पर वेश्या की तरह हाव-भाव दिखा रहा था। और शमशेर अपने कैम्प की तन्हाई में हँस रहा था—हँसे जा रहा था!

आख़िर लाखों-लाखों सालों की सभ्यता—संस्कृति—इन्सान की प्रगति सब ख़त्म हो रहे थे। पोलैंड, हालैंड, बेल्जियम, फ्रांस—सड़े हुए

फलों की तरह पतझड़ की नंगी हवाओं के ज़ोर में गिरे जा रहे थे। कहने को युद्ध हो रहा था सिद्धान्तों के लिए—आदर्शों की रक्षा के लिए—लेकिन सिद्धांत और आदर्श कहाँ थे ! मामूली इन्सान सिद्धांतों और आदर्शों से अनभिज्ञ था—समाज तो ठहरे हुए गँदले पानी का एक तालाब था, जिसमें लहरें उठती ही नहीं—आदमी को तो अपने माहोल की वही सड़ाँध, गन्दगी और घुटन पसन्द थी क्योंकि वह इतना वृद्ध और निर्जीव हो चुका था कि अपने कमज़ोर हाथों से वह सुख नहीं निकलने देना चाहता था जो समय ने उसे दे दिए थे क्योंकि उसमें जिन्दगी नहीं थी—निर्माण का हौसला नहीं था—कल्पना की ताक़त नहीं थी। ऐसे माहोल में पल कर इन्सान की शक्तियाँ विनाश की ओर बढ़ती हैं—वह अगर बना नहीं सकतीं तो तोड़ना ही चाहती हैं। इसमें उस शक्ति का दोष नहीं—दोष तो प्रतिक्रिया की उन ताक़तों का है जो चट्टान बन कर प्रगति के मार्ग में खड़ी हुई हैं—जो चाहतीं नहीं कि उन बन्द तहख़ानों में रोशनी की एक भी किरण आए और अन्धेरे में तो ज़हरीले कीड़े ही फल-फूल सकते हैं क्योंकि इन्सान की शक्तियाँ कभी ख़त्म नहीं होतीं, और इसलिए वह बन्द अन्धेरी गलियों में भटक कर विनाश का भयानक ख़्वाब देखने लगती हैं। शमशेर भी गुमराह हो गया था उन अन्धेरी घाटियों में—उसमें जोश था, तेवर था, ताक़त थी, यह ताक़त ज़िन्दगी को ख़ूबसूरत—समाज को स्वर्ग बनाने के काम में लाई जा सकती थी लेकिन समाज, दुनिया, सब उस ताक़त से जलते हैं और उसे रास्ता नहीं देते कि वह निर्माण के दीप जला सके; वह धूल डाल देना चाहते थे उस आग पर लेकिन वह ताक़त—वह आग विद्रोह कर उठती है और अगर वह आग—वह ज्योति विकास की दीपशिखा नहीं बन पाती तो श्मशान की ज्वाला तो बन ही जाती है जिसमें इन्सान, इन्सानियत, समाज और प्रगति सब भस्म हो जाते हैं। उस आग में चमक नहीं होती—उसमें अन्धेरा होता है। और वह काली आग शमशेर के दिल में भी जल रही थी और उन आदमियों के

दिलों में भी वही काली आग थी जिन्होंने आज दुनिया को बर्बाद करने का बीड़ा उठा रखा था।

*　　　　*　　　　*

"मेजर शमशेर !"

मामूली सेकिंड लेफ्टिनेन्ट से शमशेर आज मेजर शमशेर बन गया था तीन साल के भीतर ही। ओहदा बढ़ा था—इज़्ज़त बढ़ी थी—तनख़्वाह बढ़ी थी; लेकिन शमशेर के दिल के अन्दर गरजती हुई आँधियाँ उतनी ही तेज़ थीं—वह आग उतनी ही प्रचण्ड थी और न समय—न घायल और मरे हुए इन्सान, न जलते हुए घर और न मासूम चीखें उस भीषण ज्वाला को शांत कर सकी थीं। शमशेर का विद्रोह—व्यक्ति का समाज से, उस सड़े हुए निज़ाम से—विद्रोह इतना ज़बरदस्त था कि न तो उसे समाज से कोई हमदर्दी थी और न समाज के धागों में बँधे हुए आदमियों से। आदर्श और सिद्धान्त शमशेर को उस युद्ध में उत्साहित नहीं कर रहे थे; उसे इससे कोई वास्ता नहीं था कि कौन सा पक्ष जीतेगा—किस आदर्श की विजय होगी। शमशेर तो बस मौत का तूफ़ान था जो मोर्चों पर सबसे आगे होता था—गोलियों की बौछार के सामने उसका सीना होता था और उसकी राइफ़िल ख़ुद मौत बरसाती थी। लड़ाई के मैदान पर सैनिक के कोई सिद्धान्त होते नहीं—उसका कोई आदर्श नहीं होता। वहाँ तो उसका केवल एक फ़र्ज़ होता है—मारना, जी भर के बिना रहम या रियायत के मारना और....मर जाना, क्योंकि सिर्फ़ लड़ाई के मैदान पर ही व्यक्ति यह समझ पाता है कि मौत अनिवार्य है—मामूली है—उसमें कोई अचम्भा और आश्चर्य नहीं। आश्चर्य और अचम्भा तो जीवन है और जो लोग रोज़ के शांत जीवन के आदी हैं वह यह समझते हैं कि मौत कभी आएगी ही नहीं।

ऐसी ही आग ने शमशेर के अन्तरतम् को झुलस डाला था—जला

कर राख कर डाला था एक जीते-जागते इन्सान को—उसकी इन्सानियत को—उसकी हसरतों को—उसके अरमानों को और व्यक्ति की ख़ामोश चीख़ें गुमराह हो गयी थीं बमों के धमाकों में, राइफ़िलों की बिजलियों में, जलते हुए घरों के धुँए में। वह बदसूरत निज़ाम अजगर की तरह निगल गया था उस हँसते, बोलते इन्सान को और जो आदमी उस ज़हर में से बुझ कर निकला था वह हैवान बन गया था—उसकी आँखों की—उसके दिलो-दिमाग़ की रौशनी गुम हो गयी थी उस स्याही में जो अमावस-सी उसकी ज़िन्दगी के पूरे माहौल पर छाई हुई थी। और इसलिए शमशेर जो संघर्षों से उभरा था—उसकी सख़्त आँच में तपा था—पिघला था—ढला था, जिसकी आँखें कभी दलित इन्सानियत को देख कर नम हो जाती थीं—जिसका दिमाग़ चिल्ला उठता था ज़ुल्मों और अत्याचारों के ख़िलाफ़—जिसके दिल में जोश के सैलाब मौजें मारते थे किनारे की मजबूरियों को तोड़ देने के लिए वही शमशेर आज अपने मोटे बूटों से बेगुनाह इन्सानों के सिर कुचल रहा था—उसके कान बहरे थे उन चीखों और चिल्लाहटों के लिए जिन्हें उसके राइफ़िल ने ही पैदा किया था। उसकी आँखों के चिराग़ गुल हो चुके थे—उसके दिमाग़ ने चेतना की किवाड़ें बन्द कर ली थीं—उसका दिल सूख कर रेगिस्तान बन गया था और वह मौत के बवंडर में इस बुरी तरह गिरफ़्तार हो गया था कि ज़िन्दगी के सुनहरे चरागाहों की तरफ़ तो वह देख भी नहीं पा रहा था। और हैवानों ने उसकी इन्सानियत की चिता पर टेसू के जो फूल सजाए थे वह उसी ज़हर पर पल-पल कर हरे-भरे और सरसब्ज़ हो रहे थे। यह एक दर्दनाक बात थी—एक ऐसी दुर्घटना कि जिस पर जितने भी आँसू न बहाए जायँ उतना ही कम था—जितना भी ग़म न किया जाय थोड़ा था। लेकिन शमशेर की इस मौत पर किसी ने ग़म न किया था—उसके इन्सान की चिता पर किसी ने आँसू न बहाए थे। बस उसके बुझे हुए दिल के वीरानों में जो तूफ़ान उठते थे वह अपनी बन्दिशों से टकरा कर

लौट आते थे और गूँज उठते थे—चीख़ उठते थे।

लेकिन इस मुर्दे की दुनिया ने इज़्ज़त की—आदर्शों के ठेकेदारों ने दुहाई बोली क्योंकि उसकी हैवानियत से उनकी सोने और ख़ून की मीनारें ठोस हो रही थीं। उन्होंने उसे तमग़े दिए, उसका ओहदा और उसकी तनख़्वाह बढ़ाई लेकिन यह सब उसके लिए बेकार थे—क्योंकि वह मुर्दा था—पागल था—अंधा था।

* * *

हिन्दुस्तान की सरहदों के आस-पास भी युद्ध के अंगारे ज़ोर-ज़ोर से धधक रहे थे। जापान की फ़ौजें सिंगापुर, मलाया और रंगून पर कब्ज़ा कर चुकी थीं। और अब आज़ाद हिन्द फ़ौज जापान की मदद से हिन्दुस्तान से लगी हुई सरहदों को तोड़ देना चाहती थी। आसाम के दामन पर लहलहाते हुए चावल के खेत, मनीपुर का मासूम दिल जो सभ्यता के रेगिस्तानों के बीच अब भी हरा-भरा था, इम्फ़ाल और कोमिला की रंगीन वादियाँ जिनमें हसीन इन्सानों के दिल प्रकृति के संगीत के साथ-साथ अब भी नाच उठते थे—थरथरा उठे उस भूचाल से जो उनकी बुनियादों में घुसा जा रहा था।

वतन की आज़ादी, आदर्शों की टकराहट, सामयिक झगड़े, ना-समझी और कमअक़ली का फ़ितूर तुले हुए थे इस बात पर कि अमन् के उस स्वर्ग को तहस-नहस कर डालें—बरबाद कर दें ख्वाब-सी उस दुनिया को जो कमल की तरह सड़ते हुए समाज के बीच में अब भी अपने पूरे यौवन में मुस्करा रही थी। छोटे आदमियों की छोटी-छोटी बातें उस फूल-सी जन्नत को राख कर डालना चाहती थीं।

एक पक्ष अपने साम्राज्यवाद की चहारदीवारी को मजबूत और ठोस रखना चाहता था और दूसरा पक्ष उस चहारदीवारी को कफ़स की दीवाल मानता था कि जिसके अन्दर देश की आत्मा घुट रही होगी और वह उस क़फ़स को तोड़ कर देश की आत्मा आज़ाद बना देना

चाहता था। लेकिन शमशेर क़तई बेख़बर था इन पक्षों से—इन आदर्शों से। उसे देश, काल और आदर्शों से कोई मतलब नहीं था—वह लड़ रहा था क्योंकि उसे लड़ना था—क्योंकि वह सब कुछ तोड़ देना चाहता था—ख़त्म कर देना चाहता था।

और इसलिए वह अपनी पूरी फ़ौज के साथ आया था नागा-गारो-लुशाई पर्वतमालाओं के आस-पास के मैदानों में मौत बरसाने के लिए।

४

एक मोर्चा हो चुका था। उस मोर्चे में कौन पक्ष जीता था और कौन हारा था यह तय नहीं हो सका था। हाँ ! आदमी सैकड़ों घायल हुए थे—सैकड़ों मरे थे—उन रंगीन घाटियों में संगीत के बलखाते हुए समन्दर की जगह मौत के वीराने खड़े हो गए थे—चीख़ें थीं—चिल्लाहटें थीं—राइफ़लों और मशीनगनों के धड़ाके थे और मौत का नंगा तांडव था। सभ्य इन्सान एक दूसरे को मारने पर कमर कसे हुए थे—आदर्शों के लिए और उन शान्त वादियों में रहने वाले असभ्य मुस्करा देते थे उन पर जो सभ्यता और संस्कृति का डंका पीटने में सबसे आगे थे। वे भोले-भाले फूल यह समझ नहीं पा रहे थे कि इन्सान इन्सान को आख़िर इतनी तादाद में क्यों मारता है—क्यों बेगुनाहों को क़त्ल करता है—क्यों मासूम औरतों के माथे की सिन्दूर पोंछ देता है और उनकी गोद को सूना कर देता है—क्यों वे मुस्कराते हुए घरों में आग लगा देता है। वे भोले, भाले फूल यह नहीं समझ पाते थे—बस हाँ—वह नादान खासी बाला जो तमाम जवानी यह सोचने में गुज़ार चुकी थी कि इन वादियों के सर पर मँडराते हुए पर्वतों के उस पार क्या है, अब यह पूरी तरह देख रही थी—उसके प्रश्न का पूरा उत्तर मिल चुका था और जवाब उस भोले से सवाल के लिए बहुत कड़ा था। पर्वतों के पार से तो सिर्फ़ एक दानव उभरा था जो उससे और उस जैसे हज़ार फूलों से ज़िन्दगी और यौवन छीन लेना चाहता—जो उनकी ज़िन्दगी

की बहारें छीन लेना चाहता था और उनके बदले मौत की नंगी पतझड़ छोड़ देना चाहता था जो चूस डाले—ख़त्म कर डाले उनकी उमङ्ग-भरी हुई ज़िन्दगी को और इसलिए बच्चे उन छोटी-छोटी झोपड़ियों में अपनी माँओं से चिपक कर चीख़ उठते थे और नादान बाला के नयन उलझ जाते थे युवक की प्रेम भरी आँखों से इतने ठोस आलिंगन में कि कोई पतझड़ उनको जुदा न कर सके—उनकी जिन्दगी को वादियों को—उनके प्यार के सदाबहार बसन्त को लूट न सके। आदमियों की दुनिया में—संस्कृति और सभ्यता की दुनिया में—जो कोलाहल है, जो चीख़-पुकार है, जो बेमाने हविस है, जलन है, ईर्ष्या है या नफ़रत है उसे यह इन्सानी जन्नत में रहने वाले क्योंकर समझते। लेकिन उनके न समझने पर भी विनाश का सैलाब उनके स्वर्ग में ज्वालामुखी की आग की तरह उमड़ता हुआ चला आ रहा था—तोड़ता-फोड़ता उन बहारों को और उस स्वर्ग को रौंदता हुआ।

इम्फ़ाल के छोटे से गाँव में जहाँ कभी रूप और जवानी आज़ाद फ़िज़ाओं में झूम उठते थे वहाँ अब सिर्फ़ मौत थी। वहाँ के रहने वालों की शांत सुन्दर जिन्दगी में राइफ़िलें और मशीनगन और उनके साथ-साथ फ़ौजी अफसर भी समा गए थे। और बिना आपत्ति के वह भोले-भाले नादान लोग उन आदमियों को भी प्रेम और आदर से गले लगाए हुए थे जो उन्हीं की मौत और विनाश के प्रतीक थे।

शमशेर इस सब के बीच में उस टापू की तरह था जिसके चारों तरफ़ समन्दर की नीली-नीली उमंग-भरी लहरें दिन-रात—हमेशा-टक-राया करती हैं। उसका व्यक्तित्व खुट्टल हो गया था और उसके ऊपर नफ़रत की इतनी मोटी पर्त जम चुकी थी कि सारा संसार—सब कुछ उसके लिए एक वीराने से भी गिरा हुआ था। उसके कान समाज ने बहरे कर दिए थे—उसकी आँखों के आँसू सुखा दिए थे एक भयानक आग ने और न उसका दिल पसीजता था, न उसकी आँख पुरनम होती थीं और न उसके व्यक्तित्व के अन्दर इन्सानियत हिलोरें लेती थी।

क्योंकि दुनिया का—समाज का—इन्सानियत का जो रूप शमशेर ने देखा था, उसने उसके अन्दर प्रतिकार की भावना को विराट रूप दे दिया था। लेकिन जिस दुनिया में वह अब आया था, वह दुनिया ही दूसरी थी—वह दुनिया ही नहीं थी—स्वर्ग था—एक सुहानी सी जन्नत जिसमें प्यार और हुस्न और इन्सानियत हमेशा जगमगाया करते हैं। और एक नशे की तरह—एक संगीत की तरह वह सौन्दर्य उन नफ़रत से मढ़े हुए किवाड़ों पर दस्तक दे रहा था। शमशेर देख रहा था कि उसके साथ जो ताक़तें आई थीं वह उस स्वर्ग को तबाह कर देने पर तुली हुई थी—वह यह नहीं महसूस करना चाहता था। वह यह भी नहीं महसूस करना चाहता था कि उसके व्यक्तित्व के अँधियारे तहख़ानों के अन्दर बन्द ज़िन्दगी की बुझी हुई राख में फिर से जीवन की हल्की सी लहर दौड़ने लगे और उस लहर से वह राख काँप उठे—सिहर उठे। क्योंकि जब वह दुश्मन के सीने पर निशाना लगाता था—या जब बमों का धुँआ और उसकी लपटें उजड़े हुए घरों से उठती थीं तब बाँस के झुर-मुटों—ऊँची-ऊँची घास और लाल-पीले हज़ार फूलों में रसमसाती हुई ज़िन्दगी की कशिश वह महसूस करता था।

वह यह महसूस नहीं करना चाहता था—वह यह भी नहीं चाहता था कि धरती के उस स्वर्ग को जलते, उजड़ते देख कर, मौत से विकृत आदमियों के चेहरे को देख कर और नादान युवतियों की आँखों में डर और मौत की छाया देख कर उसके अन्दर खलबली हो—थोड़ी सी भी भावना पैदा हो। लेकिन वह तो होती ही थी जैसे कि तालाब के ठहरे हुए पानी को हवा की छोटी सी रमक सिहरा दे। न तालाब सिहरना चाहता है—न वह झोंका उसे सिहराना चाहता है लेकिन सिहरन तो होती ही है और होगी ही। और शमशेर इसको रोकने में उतना ही मजबूर था जितना तालाब का पानी।

* * *

तूफ़ान के पहले कहा जाता है कि शांति होती है—वही शांति शायद उस समय इम्फ़ाल के मोर्चे पर थी और उस मोर्चे के बाद (जिसमें जीत की बात तय नहीं हो सकी थी) दोनों ताक़तें शांत थीं। उस शांति में—उस ठहराव में—शमशेर को यह सोचने और महसूस करने का अवसर मिला था। और क्योंकि उस महसूस करने से जिसे शमशेर कमज़ोरी समझता था, वह डर गया था, इसलिए शमशेर चाहता था कि आग एक बार फिर भड़क उठे—तूफ़ान एक बार फिर फूट पड़े। वह चाहता था कि घटनाओं का—विनाश का—बरबादी का क्रम टूटे नहीं—एक लगातार ताँता सा बँध जाय जो अवसर ही न दे शमशेर को सोचने-समझने का क्योंकि ठहरने से—शांति से—सोचने-समझने से शमशेर को डर लगने लगा था और दिमाग़ी शून्य में शमशेर ज़हर भर डालना चाहता था कि कहीं उसमें इन्सानियत या भावुकता फिर से जन्म न ले ले—पनपने न लगे।

लेकिन शमशेर के न चाहने पर भी वह शांति कुछ देर तो रही ही और उस देर में जैसे उस गहरे धुंध के अन्दर फिर से कोई चिराग़ रोशनी में फूट पड़ने की चेष्टा करने लगा। फ़िज़ा में समाई हुई धड़कनें उसके अन्दर समाने की कोशिश करने लगीं।

* * *

वह फ़ौजी दस्ता जो शमशेर के नीचे था और उसके साथ और भी बहुत से उन थोड़े से दिनों के लिए कोमिला में थे। वह वक़्त फ़ौज के हर आदमी के लिए बहुत क़ीमती होता है—वह ज़िन्दगी और मौत के बीच का वक़्त होता है—और उस वक़्त में सिपाही आने वाली मौत की तैयारी करता है ज़िन्दगी की ख़्वाहिशें पूरी कर के—शराब से, औरत से, हँसी-ख़ुशी से और क़हक़हों से—क्योंकि वे हैं जीवन के सही आदर्श—ज़िन्दगी और जीने का मक़सद। लेकिन वे लोग ज़िन्दगी के इस सुख से कोई आनन्द नहीं उठा पाते—

उन्हें मौत का ख़ौफ़ रहता है और ऊपर से उनके चेहरे पर मुस्कराहटें भले ही हों लेकिन उनकी आत्मा में और अन्तरात्मा में मौत की भयानकता होती है और जिस इरादे से या प्रतिकार की जिस भावना से वह ज़िन्दगी का सुख घसीटना चाहते हैं उसमें वह कभी कामयाब नहीं हो पाते।

ज़िन्दगी पर आज हज़ारों बन्दिशें हैं और यह क़ुदरत का वह आज़ाद ग़ुबार आदमी के वहम की भूलभुलैया में बिल्कुल खो गया है। वह उन चीज़ों में सुख और शांति ढूँढ़ना चाहता है जिनमें वह नहीं हैं और जिनमें वह हैं, उन्हें वह भूल गया है और अगर नहीं भूला है तो उन सही चीज़ों के विकृत और भद्दे रूप से अपनी गन्दी हविस को पूरा करता है।

और इस तरह वह सब कल या परसों या उसके बाद मर जाएँगे —शारीरिक तौर पर ! इसलिए आज—आज की शाम को आख़िरी साँझ समझ कर—वह ज़िन्दगी के तमाम दियों को रौशन कर देना चाहते थे। और इसीलिए अफ़सरों के 'मेसों' और 'कैन्टीन्स्' में शराब के दौर चल रहे थे—सिगार और सिगरटों के धुएँ नीचे पटे हुए कमरे में मचल रहे थे—दिल बहलाने वाली औरतों की हँसी के फ़ौव्वारे छूट रहे थे—कोने में ज़ोरदार आर्केस्ट्रा बज रहा था—नाज़ुक पैर लकड़ी के फ़र्श पर थिरक रहे थे और जो कल तक मरे हुए थे या कल मरने वाले थे वह आज ज़िन्दगी के सुनहरे दामन को पकड़ भर लेने की नाकाम कोशिश कर रहे थे।

चारों तरफ़ मेज़ और कुर्सियाँ बिखरी पड़ी थीं और उस पर बैठे हुए फ़ौज के अफ़सर क़हक़हे लगा रहे थे—और 'कल' के बहादुर शहीदों के मनबहलाव के लिए किराए पर लाई गई औरतों की जवान साँसें ख़ाली गिलास के तले पर पड़ी हुई शराब की चन्द बूँदों में डूब जाती थीं। उनकी नक़ली हँसी अपना और उन शहीदों के लाचार क़हक़हों का मज़ाक उड़ा रही थी।

शमशेर सबसे आख़िरी कोने की मेज़ पर अकेला बैठा था। उस मेज़ पर सफ़ेद और नीले चारख़ाने का एक मेज़पोश बिछा था—गुलदस्ते में कुछ जंगली फूल थे—पास की खिड़की पर आधी ऊँचाई तक एक पर्दा पड़ा था और बाक़ी आधे के उस पार ज़मीन थी, नम और सर्द हवा थी; आसमान था, नाव की सूरत का चाँद था और हज़ारों-लाखों-करोड़ों सितारे थे। और अन्दर साथी अफ़सरों के क़हक़हे थे और घुटा हुआ धुंआँ था—बेमाने संगीत था—चाँदी की तरह चमकते हुए चेहरे थे और उन चेहरों पर शराब का गुलाबीपन था और प्लास्टिक की मुस्कराहट थी। शमशेर के पास कोई नहीं था।

उसके साथी अफ़सरों ने उसके नज़दीक आने की कोशिश बहुत पहले ही छोड़ दी थी क्योंकि चिता की आग से कोई हाथ नहीं सेंकना चाहता था और जिस मीनार पर शमशेर का व्यक्तित्व खड़ा हुआ था वहाँ तक पहुँचने के लिए उन्हें महसूस हुआ था कि उन्हें अपने जीवन के स्तर से नीचे उतरना पड़ेगा या ऊपर चढ़ना होगा और यह वे आदमी करने में मजबूर थे।

और शराब से शमशेर को नफ़रत थी—इसलिए नहीं कि शराब नशा है बल्कि इसलिए कि शराब नशा नहीं है। दुनिया शराब को नशा मान कर उसे बुरा बताती है लेकिन शराब नशा कहाँ है? नशा तो वह है जो कभी ख़त्म न हो लेकिन शराब का नशा तो ख़त्म हो जाता है और एक बार ऊँचाइयों पर चढ़कर नीचे उतरने से ज़्यादे तकलीफ़ दे कोई दूसरी बात नहीं होती—एक बार जी कर कौन चाहता है कि मर जाय। शमशेर को एक ऐसे नशे की ज़रूरत थी जो हमेशा क़ायम रहे और ऐसा नशा नहीं होता! इसलिए शमशेर को शराब से नफ़रत थी।

शमशेर के सामने सिर्फ़ हल्की-सी बियर का एक 'मग' रक्खा था। शीशे के इस छोटे से बर्त्तन में ज़िन्दगी का बीज उमड़ रहा था और सिर्फ़ उसके ही जोश को—उमंग को समाने के लिए यह बर्त्तन—या

कोई भी बर्त्तन नाकामयाब था। इसलिए हज़ारों बुलबुले किनारे की हदों पर अँगड़ाइयाँ ले रहे थे—टूट रहे थे—बिखर रहे थे—गिर रहे थे और उनकी बन्द होती हुई पुतलियों में छत पर लगी हुई रौशनियाँ सिमटी हुई थीं; रौशनी और ज़िन्दगी एक दूसरे के आग़ोश में तड़प-तड़प कर मरे जा रहे थे। उन बुलबुलों में प्रतिबिम्बित कमरे की छत—माहौल—सब कुछ चकनाचूर हुआ जा रहा था।

थोड़ी दूर पर कुछ मेज़ें छोड़ कर एक अफ़सर बैठा हुआ था। लबलबाते हुए गिलास उसके सामने आए थे और ख़ाली होकर चले गए थे और उसके कन्धे पर लगे हुए तीन सितारे ऊपर के बल्ब की रौशनी में चमचमा रहे थे। और उसके बराबर की कुर्सी पर बैठी हुई औरत तीन 'पेग' जिन और लाइम से तमतमा रही थी। उसके होठ हल्के-हल्के सुर्ख़ थे और उन पर प्यास की ख़ुश्की थी—वह ज़रा-ज़रा खुले हुए थे मानो वह एक चुम्बन के साथ ज़िन्दगी की सारी शराब को एक घूँट में पी जाना चाहते हों। और उन होठों में चमक भी थी और सस्ती छींट की फ्रॉक के नीचे धड़कते हुए सीने में ज़िन्दगी भी। उन जवान छातियों के उतार-चढ़ाव में अरमानों की लपक थी और गोरी चिकनी खाल में से उभरी हल्की और नीली नसों में गर्म और जवान ख़ून था। और सामने बैठे हुए अफ़सर में न ज़िन्दगी थी—न चमक—न ख़ून; उसमें बस शराब थी। और उस जैसे हज़ार आदमियों की नामर्द जवानी उस औरत के गर्म ख़ून में अपनी ठंडी बुझी वासना उँडेल देती थी—उसकी जवान छातियों को उनकी बूढ़ी और ठंडी उँगलियाँ नोचती थीं। मौत ज़िंदगी के साथ बलात्कार करती थी।

मगर उस औरत की आँखें—साँझ की अनन्त गहराइयों की तरह वह आँखें थीं लेकिन लगता था कि जैसे उन पर मिलों का गाढ़ा, कड़वा धुआँ मौत की चादर की तरह फैला हुआ हो। वे आँखें ज़िन्दगी के बलबलाते हुए समन्दर की तरह थीं जिनमें इन्सानियत और प्यार की मौज़ें

अँगड़ाइयाँ लेती हुई दिखाई पड़ सकती थीं लेकिन दिखाई नहीं पड़ती थीं क्योंकि तीन 'पेग' जिन और लाइम का नक़ली नशा उन पर हावी था। शायद वह नक़ली नशा हमेशा हावी रहेगा क्योंकि आँखों की मलिका को उन आँखों में नक़ली चमक क़ायम रखने के लिए उस अफ़सर की किराए की मलिका बनना था और शायद तब तक बने रहना था कि जब तक उसके शरीर के साथ-साथ उसकी आत्मा भी किराए की नहीं हो जाती। मगर फ़िलहाल उस औरत की आँखों में एक नंगी औरत के जिस्म की परछाईं थी जिसका महत्त्व सामने बैठे हुए अफ़सर के लिए 'चूइंग गम' या एक पैकेट सिगरेट के बराबर ही था।

शमशेर की आँखें कमरे के वातावरण में यू—बोट की तरह तैर रही थीं—उनका सम्बन्ध था नहीं किसी आसपास की चीज़ से; न वह निगाह किसी चीज़ को ढूढ़ रही थी, न वह निगाह किसी चीज़ पर टिक रही थी। तेज़ी से चलते हुए बैरे, मेज़-कुर्सियाँ, एक तरफ़ आर्केस्ट्रा बजाने वाले लोग—उनके साज़—उनके भड़कीले कपड़े, कुर्सियों पर बैठे हुए लोग, ख़ाकी वर्दियाँ, चमचमाते सितारे या क्राउन, जली हुई सिगरटें, आधे-खाली शराब के गिलास, औरतें—औरतें—औरतें, नक़ली लाल होंठ, नक़ली लाल गाल, बुझी हुई आँखों में नक़ली चमक, सस्ते कपड़े पर नक़ली भड़कीले डिज़ाइन, बुझे हुए सीनों पर नक़ली जोबन, उतार-चढ़ाव, बल्बों की नक़ली रौशनी—नक़ली मौत के पहले नक़ली ज़िन्दगी। जिन आँखों ने ज़िन्दगी का असली रूप—असली स्वाँग देखा था वह इस माहौल में टिकती भी तो कहाँ पर!

उस औरत की आँखें शराब की थिरकन से बहक गई थीं और बेपतवार कश्ती की तरह नशे के सतरंगी समन्दर में इधर-उधर डोल रही थी। एकाएक शमशेर की ख़ाली आँखों से वह भटकती हुई आँखें टकरा गईं—ज़लज़ला-सा आ गया। नशे के रंगीन समन्दर नक़ली ज़िन्दगी की हदों के बाहर ही बाहर मँडराया करते हैं और वहाँ से वह किनारे बेइन्तहा दूर होते हैं जिन पर शमशेर अकेला खड़ा था। और

अपनी नक़ली ज़िन्दगी के मनहूस खँडहरों के बयाबानों में क़ैद उस औरत ने चाहा कि वह दूर के किनारे उसके नज़दीक खिसक कर आ जायँ क्योंकि एकदम वह यह नहीं चाह सकी कि उसकी वह तमाम बन्दिशें टूट जायँ। वह उन सब बन्दिशों से बिल्कुल बेख़बर थी।

आर्केस्ट्रा पर एक नए 'वाल्ट्ज़' की धुन जाग पड़ी और लोग अपने साथ बैठी हुई औरतों को लेकर नए डांस की तैयारी करने लगे। उस औरत के सामने बैठा हुआ अफ़सर भी लड़खड़ाते हुए क़दमों से उठकर बोला : "डार्लिङ्ग! कम ऑन!"

किसी अजनबी भावना में डूबी हुई औरत ने आँख हटाई नहीं—"विल यू प्लीज़ ऐक्सक्यूज़ मी?"

और अफ़सर ने कंधे हिला दिए और पास की मेज़ पर बैठी हुई एक ऐंग्लो-इंडियन औरत के साथ नाचने लगा।

आँखें लगी रहीं—दिल समझ न सका लेकिन क़दम ख़ुदबख़ुद उठकर चल पड़े—शमशेर की मेज़ की तरफ़। "क्या मैं बैठ सकती हूँ?"

"पूछने की ज़रूरत? बैठना चाहो तो बैठ जाओ!" शमशेर ने आँख उस तरफ़ करके देखा भी नहीं।

"जी मेरा नाम है···मॉली!···आप···?"

"हूँ!"

"आपका···नाम···जान सकती···हूँ?"

"क्यों?"

मॉली सिटपिटा गई। शमशेर की ठंडक ने मॉली के चारों तरफ़ बने हुए सीप के कैदख़ाने को जला कर राख कर डाला। ऐसा आज तक कभी नहीं हुआ था उसके साथ। आदमी की हविस ने उसको चूस डाला था। उसके जवान सीने, उसके नाज़ुक होठों, उसकी मासूम आँखों को देखकर आदमियों के चेहरे पर वह चमक आ जाती थी जो उस अजगर की आँखों में होती है जब वह अपने शिकार को अपने ज़हरीले चंगुल में तोड़ता-मरोड़ता है। उसको देखकर उनकी आँखों

में ज़हर के सोते फूट पड़ते थे—उनके मुँह में उत्तेजना की लिबलिबा-हट भर जाती थी ! लेकिन इस आदमी के चेहरे पर न तो वह क्रूरता थी, न आँखों में वह ज़हर । उसके व्यक्तित्व की सतह पर सिर्फ़ बेरुख़ी थी और मॉली ने आज तक आदमी के चेहरे पर औरत के लिए बेरुख़ी नहीं देखी थी । बेरुख़ी तो शमशेर के ऊपरी व्यक्तित्व पर ही थी और उसका वैसे अपने में कोई मतलब नहीं था । फिर क्या था शमशेर के अन्दर जिसने मॉली के निश्चेत व्यक्तित्व में खलबली पैदा कर दी थी ।

जो कुछ इन्सान में अपना होता है—उसके अन्दर महसूस करने की जो भावना या चेष्टा होती है उसे मिटाने की कोशिश दुनिया, समाज और सभ्यता करते रहते हैं और अक्सर भावना का वह बीज पनपने के पहले ख़त्म भी हो जाता है । लेकिन कभी-कभी वह बीज ख़त्म नहीं हो पाता और उन नक़ली तहों के पीछे क़ैद हुए इन्सान में समझदारी और हमदर्दी की लहरें फिर से दौड़ने लगती हैं ।

मॉली का दृष्टिकोण कोई मनोवैज्ञानिक या किसी दार्शनिक का नहीं था । एक तो समाज और फिर उसकी परिस्थितियों की मजबूरियों ने उसकी भावनाओं को बिल्कुल खुट्टल बना दिया था । और आज—और आज....

एक सिपाही ने शमशेर को खटाक् से सलाम किया : "कर्नल साहब ने आपको याद किया है ।" शमशेर उठकर चला गया और मॉली के दिल में वह नई जागी हुई जिज्ञासा उसे छेड़ कर बाहर के आसमान तक उड़ गई ।

*　　*　　*

५

—स्ट्रीट । एक तंग दुमंज़िला मकान जो सफ़ेद पुता हुआ था लेकिन जिसके बाहर सफ़ेद प्लास्टर जगह-जगह से उखड़ गया था । यह

मकान कोढ़ी की तरह सबसे अलग खड़ा हुआ था। उसकी मालकिन जो अब लगभग सत्तर साल के ऊपर होगी अपने ज़माने की हसीना थी। हालाँकि उसके चेहरे पर अजीब सी झुर्रियाँ पड़ी हुई थीं—हाथ-पैर, सारा जिस्म सूखा हुआ और बेजान मालूम पड़ता था और सीना उसका बिल्कुल चपटा था लेकिन कभी उस सीने पर उभार था—जोबन था—ज़िन्दगी की गर्मी और गुदगुदाहट थी। कभी उस खाल में ताज़गी थी, चमक थी, चिकनाहट थी लेकिन अब वह मुर्दे की तरह बेजान और सूखी हुई मालूम पड़ती थी और लगातार बरसों तक अफ़ीम पीने के बाद वह सूखी हुई, पीली और मोम जैसी फीकी पड़ गई थी। उस औरत के बाल उलझे हुए थे जूट की तरह, लेकिन अब से कई साल पहले वह मुलायम और चमकदार थे और जब उनमें सूरज की सुनहरी किरनों की धूल भर जाती थी तब उसके सामने खड़े हुए आदमी की आँखों में प्रेम की ज्योति जगमगा उठती थी।

लेकिन वह हुस्न और वह सौन्दर्य एक विदेशी की वासना की भट्ठी में जल कर राख हो गया था और रूप की मलिका सड़क की औरत बन गयी थी जो उस तेज़ी से बढ़ते हुए शहर में विदेशी सौदागरों और क़िस्मत के शिकारियों के लिए सामाने—राहत थी। इन्हीं में से किसी की औलाद थी मॉली। मॉली अपनी माँ के बुढ़ापे के घिरते हुए अँधियारे में एक दीप थी—स्नेह या वात्सल्य का नहीं बल्कि बुढ़ापे के सुख का जो उस बुढ़िया के काम में तब आएगा जब उसकी जवानी ख़त्म हो जायगी और उसके मरे हुए हुस्न का ख़रीदार ढूँढ़े से भी नहीं मिलेगा। मॉली की आने वाली जवानी उस बूढ़ी वेश्या के लिए गड़ा हुआ ख़ज़ाना था जिसे वक्त आने पर वह निकालेगी और उससे फ़ायदा उठाएगी।

और कुछ साल पहले वह समय आ गया था। मॉली तब पन्द्रह साल की रही होगी। उसकी माँ क्या थी उसे नहीं मालूम था—उसे यह भी ठीक-ठीक नहीं मालूम था कि वह ख़ूबसूरत है लेकिन चारों तरफ़ के

पहाड़ों के लम्बे-चौड़े सायों में रंगीन ख़्वाब उसे आते थे और उसकी छोटी-छोटी उभरती हुई छातियाँ मचल जाती थीं, ख़ुदबख़ुद, जब उनमें एक हल्की सी थिरकन होती थी।

उसकी माँ मॉली की जवानी की कलियाँ फूट पड़ने के लिए बेसब्र थी क्योंकि पिछले कुछ समय से अफ़ीम उसे कम मिलती थी और खाने की कमी से वही मॉली उसे बोझ मालूम पड़ने लगी थी।

और तब एक दिन एक ख़ूबसूरत नौजवान गाड़ी पर से मॉली के मकान के सामने उतरा था। मॉली ने ऊपर की खिड़की से उसे देखा था और उसे वह अच्छा लगा था। नौजवान मॉली की माँ के पास गया था—दोनों में आपस में कुछ बातचीत हुई थी—सौदा शायद ठीक बैठा होगा क्योंकि माँ उस नौजवान को लेकर ऊपर गयी थी और मॉली के पास उसे छोड़कर नीचे चली आई थी। मॉली का चेहरा शर्म से और ख़ुशी से लाल हो गया था। और पहली बार जब उस नौजवान के होंठ मॉली के पतले सुर्ख़ होठों पर पहुँचे थे तो मॉली का रोम-रोम ख़ुशी से चीख़ उठा था और उसने जिस्म के अन्दर हलका सा दर्द महसूस किया था। और फिर उस नौजवान ने कमरे की बत्ती बहुत धीमी कर दी थी।

"क्या कर रहे हो ?" मॉली को अच्छा तो लग रहा था पर उसने घबरा कर कहा।

"डरो मत—" नौजवान की साँसों में उबाल था।

"पर....पर...."

और मॉली का फ्राक खुला और सरक कर गिर पड़ा। मॉली डर से सहमी हुई थी पर एक बहुत अजनबी-सी लपकन उसके अन्दर थी। और लैम्प की बहुत धीमी रौशनी में दीवाल पर पड़ी हुई मॉली की छाया पर नौजवान के शरीर की काली परछाई पड़ी और फैल गई। मॉली के मुँह से चीख़ निकल पड़ी। आतिशदान पर रक्खा हुआ नाज़ुक

काँच का बर्त्तन झन्न से गिरकर टूट गया; पानी बिखर गया और अन्दर पड़ी हुई रंगीन मछलियाँ अन्धेरे में तड़प-तड़प कर मर गईं।

मॉली ने एक भयानक पीड़ा महसूस की। और फिर ज्यों-ज्यों वह पीड़ा पिघल कर उत्तेजना के सहस्रों चश्मों में फूट पड़ने को हुई वैसे ही वह काली परछाईं शिथिल हो गई। जो हाथ लोहे के शिकंजे की तरह मॉली के शरीर को जकड़े हुए थे वह ढीले पड़ते गए जैसे-जैसे मॉली का शरीर पीड़ा से उभर कर उस आलिंगन को चाहने की चेष्टा करने लगा। नौजवान की उत्तेजना बहुत जल्द उबल कर शांत हो गयी और मॉली के अन्दर जब तक उत्तेजना जागने को हुई तब तक उसे सन्तोष देने वाली चीज़ शांत और शिथिल हो चुकी थी।

उस रात को नौजवान चला गया। कमरे के अन्दर लैम्प की बत्ती उतनी ही धीमी थी। कमरे के अन्दर रखी हुई हज़ारों चीज़ों की लम्बी, चौड़ी, टेढ़ी, तिरछी परछाइयाँ दीवालों और छत पर छाई हुई थीं और परछाइयों के उस भयानक बयाबान के बीच में मॉली के नंगे शरीर की भी टूटी-फूटी छाया सहमी हुई सी पड़ी थी। उस अँधेरे में भी मॉली के शरीर का हर एक रोम जिस्म में से उभर कर जैसे किसी भागती हुई चीज़ के लहराते हुए दामन को पकड़ने की कोशिश कर रहा था—बच्चे की नन्हीं-नन्हीं उँगलियों की तरह जो चाँद-तारों को पकड़ने के लिए खुली की खुली रह जाती हैं। और मॉली के शरीर की अधूरी इच्छा में डर था और तड़प थी। उसके शरीर के ऊपरी हिस्से में जो दो कसी हुई, गठी हुई कलियाँ थीं वह अब एक दम समय से पहले ही मजबूरन खिल गई थीं और हवा में अपना पराग उँडेल देने के लिए बेसब्र थीं लेकिन कमरे में हवा नहीं थी—घुटन थी। और मुलायम तकिए पर जहाँ थोड़ी देर पहले किसी का सर था वहाँ अब मॉली के आँसू टप-टप करके गिर रहे थे—वह दुख या सुख के आँसू नहीं थे—वह असन्तुष्ट उत्तेजना के मजबूर और कड़ुवे आँसू थे। सुबह के उगते हुए सूरज की गुलाबी और सुनहरी किरनें मुरझाई और सहमी हुई

कली पर पड़ रही थीं जो रात के पहले तक तो नादान और मासूम थी पर रात के काले तूफ़ानों ने उसे झकझोर कर मुखरित हो जाने को उकसाया था। लेकिन जब वह अपनी पंखुड़ियाँ खोलने को हुई थी तभी तक एक ठंडा भारी पाला उस पर पड़ा था और अपनी अधखुली दशा में ही वह मुरझा गई थी।

सुबह नाश्ते के वक्त अंडे भी थे और रोटी के साथ काफ़ी मक्खन भी।

अगली रात—उससे अगली रात और लगातार कई रातों तक वही नौजवान रोज़ आता रहा। मॉली के जिस्म के कपड़े बदल गए—कानों में और गले में हल्का, सस्ता ज़ेवर भी चमकने लगा, माँ दिन भर अफ़ीम के नशे में मग्न रहने लगी, ज़िन्दगी में सुख आने लगा और मॉली को पता लगा कि वह वेश्या बन गयी है। उसके अन्दर कोई भावना जाग्रत नहीं हुई—वेश्या बनने के क्या माने होते हैं, मॉली को नहीं मालूम था। थोड़े दिनों के बाद उस नौजवान का आना बन्द हो गया—नया आदमी आया—नए आदमी आए। मॉली ने जो कुछ उस पहली रात को महसूस किया था—वह फिर कभी महसूस नहीं किया क्योंकि उसी रात को अनजाने में अधखिले गुलाबों का वह जंगल फूलने की आस में ही तड़प कर सूख गया था। बाद को फिर कभी उसका शरीर कामना से तड़पा नहीं था—कभी वे शारीरिक असन्तोष के आँसू दोबारा आँखों में नहीं आए थे और न वे पुराने सपने ही जागे थे। आख़िर रोटी कमाने के लिए सब कुछ-न-कुछ पेशे करते हैं—कोई स्कूल में पढ़ाता है, कोई डाक्टर है, कोई सरकारी दफ्तरों में, कोई सिपाही और मॉली का पेशा भी उनमें से ही एक था।

इस तरह रोज़ एक नया आदमी मॉली के साथ प्रेम का नक़ली स्वाँग भरता था और रोज़ उसके व्यक्तित्व पर चढ़ी हुई पर्त मोटी और भारी होती जाती थी। फिर भी कहीं दूर पर सपनों का पंछी उदास, अकेला, अनमना-सा पड़ा था और हालाँकि धीरे-धीरे मॉली

उस पंछी से बेख़बर होती जा रही थी फिर भी वह वहीं पर था।

लड़ाई छिड़ गई थी—यहाँ तक कि उसका काला साया मनीपुर और कोमिला पर भी पड़ गया था। मॉली और उस जैसी बहुत सी औरतों का 'बिज़नेस' उस ज़माने में काफ़ी बढ़ गया था। मॉली के जिस्म और चेतना की गहराइयों में अकेलेपन का वह पंछी और ज़्यादा अकेला—और ज़्यादा उदास हो गया था और मॉली को इसका पता भी नहीं था।

* * *

मिलीटरी के कैन्टीन को छोड़ कर मॉली बाहर निकली, घर की तरफ़ जाने के लिए। बाहर काफ़ी ठंड थी और पहाड़ों की कोख में से कुहासा उमड़ता हुआ निकला और रात के नीले आसमान पर छा गया—छा गया ज़मीन पर—चाँद सितारों पर—पेड़, पौदों और फूलों पर और मॉली के चारों तरफ़। और धीरे-धीरे कैन्टीन में बजती हुई वाल्ट्ज़ की धुन बढ़ती हुई दूरी में और कोहरे की घाटियों में धीमी होती गई, गुम होती गयी और....और मॉली को लगा कि वह शून्य की सूनी गहराइयों में खोई जा रही है। दिल, दिमाग़ और शरीर की निश्चेतना—वह आदत जो बातों को ठीक वैसा ही मानने की आदी हो चुकी थी—वह बेरुखी सब कुछ जैसे इस हसीन माहोल में बीते हुए कल की बात लगी; आज जैसे वह पन्द्रह साल वाली मॉली फिर से ज़िन्दा हो गई, परिस्थितियों के मनहूस खँडहरों में से उभर आई, वह मॉली जिसके दिल की अधूरी ख्वाहिशें और शरीर की असन्तुष्ट इच्छाएँ उस काली रात की भयानक परछाइयों के बयाबान में खो गई थीं। अकेलेपन का—सूनेपन का तार पिछले कई बरसों की बन्दिशों से आज़ाद होकर ज़ोर से झनझना उठा और आज की मॉली दर्द के समन्दरों में खो गई। चाँद और मॉली के बीच कुहासा बहुत सघन और विस्तृत हो गया था।

उस कोहरे ने हर चीज़ को ढँक लिया और शून्य में जैसे सिर्फ़ मॉली रह गई और कोई नहीं। और जब आस-पास कोई नहीं होता और दबी हुई चेतना दबी हुई चिनगारी की तरह भड़क उठती है; जब तिलस्म टूट जाता है और परिस्थितियों के जाल में से सुलझ कर व्यक्ति अपने आप को ढूँढ़ निकालता है तब उसे ऐसा लगता है कि अन्धेरे के बहुत गहरे गढ़े में वह बिल्कुल नीचे अचेत पड़ा है और संगमरमर के वह नाज़ुक सहारे नज़र आते ही नहीं कहीं दूर तक। ज़िन्दगी का महल चकनाचूर हो जाता है और उम्मेद है कि बस डूबती जाती है कि जैसे समन्दर की सतह पर भटकता हुआ जहाज़ धीरे-धीरे गुम होता जाता हो क्षितिज की गहराइयों में।

लेकिन ज़िन्दगी मौत से ज़्यादा बलवान होती है—रौशनी अँधेरे से ज़्यादा ताक़तवर होती है। उम्मीदें सब टूट जाती हैं, सहारे सब ग़ायब हो जाते हैं, हसरतों के चमचमाते हुए चमन पर बालू का रेगिस्तान फैल जाता है मगर फिर कभी-कभी ऐसा होता है कि एकाएक उस गहरे अन्धेरे में उजाला फूट पड़ता है। मॉली के दिल में जो कुछ भी कभी था वह पैदा होने के पहले ही मर गया था क्योंकि उसकी जवानी बस पल भर को उभरी थी—हसरतें, तमन्नाएँ, अरमान सब एक लमह के लिए मुस्कराए थे। उसके बाद न सिर्फ़ वह मर गए थे—झुलस गए थे बल्कि एक दम ग़ायब भी हो गए थे—जड़ से मिट गए थे। प्यार ने आँखें खोलते ही आँखें मूँद ली थीं।

लेकिन आज बरसों के बाद जब मॉली प्यार के माने ही भूल चुकी थी—जब उसका शरीर बिकने का आदी हो चुका था और रुपए की लपटों में उसका दिल जल चुका था—जब वह एक कठपुतली की तरह खाती-पीती थी, 'मेसों' और होटलों में अफ़सरों के साथ नाचती थी, और शरीर का सौदा करती थी तभी शमशेर की और उसकी नज़रें टकराई थीं। शमशेर की आग सी नज़रों ने उस सर्द पुतली में भी थिरकन पैदा कर दी थी और हज़ारों-करोड़ों मोम के पर्त्त जो मॉली

के चारों ओर चढ़े थे पिघलने लगे थे और मीलों अन्दर जो पंछी कैद था वह आज़ादी की ललकार महसूस करने लगा था और तहख़ानों की सर्द और मुर्दा फ़िज़ा में जकड़े हुए पंछी के पंखों में भी लपक पैदा हो गयी थी। तन्हाई के वीरानों में आग सी लग रही थी।

जब मॉली ने अपने आप को उस गहरे कुहासे में ढँका हुआ पाया तब उसे ज़िन्दगी के अकेलेपन का अहसास हुआ और उस मॉली के अन्दर एक नई मॉली ने जन्म लिया जिसकी उमंगों ने ज़िन्दगी की पहली ही साँस ली थी, जिसके दिल ने प्यार का पहला गीत गुनगुनाया था, जिसके अरमानों ने सबसे पहला सपना देखा था। और जब वह मॉली कई साल के बाद वापस लौटी तो उसने अपने ही ढाँचे में एक अजनबी को देखा। उस अजनबी के बालों में चमक की उतनी लहरें नहीं थीं, उसके माथे पर जवानी की चमक नहीं थी—बेबसी और लाचारी ने वहाँ स्याह रेखाएँ खरोद दी थीं, उसकी आँखों में ज़िन्दगी नहीं जगमगा रही थी और उसके गालों पर वह सुर्खी नहीं थी जिसे देख कर गुलाब पीले पड़ जाते हैं। मॉली ने उस अजनबी को पसन्द नहीं किया। वह समझ नहीं सकी कि वह अजनबी मॉली वहाँ क्यों और कैसे आई। और जब आज की मॉली ने उस दूसरी मॉली को देखा तो कड़ुवाहट और दर्द के अगिनत चश्मे फूट पड़े और अचानक उसने बहुत अकेलापन महसूस किया।

इस तरह उस एक मॉली के अन्दर दो व्यक्ति हो गए। दोनों एक दूसरे से बहुत दूर थे—दोनों बिल्कुल जुदा थे—दोनों में कोई मेल नहीं था। लेकिन उन दोनों का होना भी ज़रूरी था। वह पंद्रह साल की उम्र वाली मॉली तो बरसों बाद अन्धेरे के क़फ़स में से निकली थी—उसके अन्दर एक नए अनुभव ने एक नयी जान डाल दी थी—वह नहीं मर सकती—उसके होठों पर न जाने कितने अनगाए गीत थे। और दूसरी मॉली—उसका होना तो ज़रूरी था ही। उसके माथे पर ज़िन्दगी का तेवर न सही—आँखों में चमक और दिल और होठों पर प्यार के

अगनित नग़मे और अफ़साने न सही पर कॉफ़ी के लिए, खाने के लिए, मकान के किराए के लिए और तन के कपड़ों के लिए उसे ज़िन्दा रहना था। उसी पर तो उस दूसरी मॉली की परवरिश होती थी और वह मूरख उससे नफ़रत करती थी—नादान !

और अन्दरूनी खिंचाव के इस माहोल के बीच मॉली शमशेर को रोज़ 'मेस' में देखती रही। आज की मॉली तो मजबूरियों की दलदल में इतनी फँस गई थी कि उसके बोझिल क़दम उठते ही न थे और अगर वह उन्हें उठाने की कोशिश करती भी थी तो उसके सारे जिस्म में पीड़ा होने लगती थी। और पहले की मॉली अरमानों के हवाई घोड़ों पर बैठी, सरसराती हुई भागी जा रही थी।

शमशेर को उस औरत के अन्दर की इस कशमकश का, उस उथल-पुथल का कोई पता नहीं था और न परवाह थी। क्योंकि उसकी दुनिया में नफ़रत की काली लपटें प्रचंड थीं और नफ़रत की दुनिया में वह नफ़रत का देवता बन कर मौत बरसा रहा था। औरत से—प्यार से उसका कोई सरोकार नहीं था। क़तई नहीं...

६

कई दिन से शमशेर यह महसूस कर रहा था कि कोई शायद उसका पीछा करता है। हो सकता है कि यह वहम् मात्र हो। कोई भला उसका पीछा क्यों करने लगा ? लोग तो उस मार्ग से कतराते हैं जिस पर वह चलता था—जीवन में अब तक किसी ने भी उसका पीछा नहीं किया ! क्योंकि उसकी जो राह थी वह दुनिया की नहीं थी—उस जलते हुए मार्ग पर दुनियावाले क्यों चलें ? वह तो बस अपनी सीमाओं के अन्दर ही चले हुए मार्ग पर क़दम दोहराते हैं। नए रास्ते—नए क़दम उनके नहीं हैं। शमशेर की राह भी कोई ख़ास नहीं थी लेकिन समाज के सामने दो रास्ते होते हैं। वह मुलायम राह पर तभी चल पाते हैं जब

वह कुछ लोगों को उस दूसरी सख़्त राह पर चलने के लिए छोड़ दें और अपने मार्ग में फूलों को क़ायम रखने के लिए वह कुछ दूसरों को उस जलती हुई कटीली राह पर पटक भी देते हैं।

फिर कोई उसका पीछा क्योंकर करेगा? एक ने उसका पीछा किया था—ताजो! पर ताजो····दर्द से, कड़ुवेपन से शमशेर का चेहरा उस चाँदनी में विकृत हो गया। एक आह निकली जो उसके चारों तरफ़ फैले हुए कोहरे की झीनी चादर को लहरा गई। ताजो····'वाल्ट्ज़' की धुन मद्धिम होती जा रही थी दूरी में, पूरा चाँद टँका था आसमान की चादर में और सितारे बेशुमार थे लेकिन सब बेजान-फीके-ठंडे और जंगली घास और फूलों की बहती हुई सुगन्ध, कुदरत का सुहाना रूप यह सब था लेकिन शमशेर के नज़दीक यह सब कुछ ठंडा था, फीका था, बेमाने था। ताजो····वह आग और बर्फ़ की चट्टानें—जिनके पीछे शमशेर ने अपने आपको ख़ुद जान के क़ैद कर लिया था—नफ़रत की वह दीवाल—वह आड़ जिसके भीतर इस निकम्मी दुनिया की—इस स्वार्थी समाज की एक आह भी न पहुँच पाए और जिसके पीछे से वह उनको ख़त्म कर दे, भूल जाय कि वह इन्सान है क्योंकि इन्सान का जो रूप उसने देखा था उसे देख कर उसे इन्सान के नाम से चिढ़ हो गई थी—उन सबको उस दर्दनाक याद ने ढहा दिया और वह नकाब जो शमशेर ने अपने चेहरे पर लगा लिया था खुल गया। एक बार फिर वह चेहरा बिखर आया जो दरअसल इन्सान का था, जो दर्द से तड़प सकता था, जो दूसरों की मुसीबतें देख कर आँसू बहा सकता था, दूसरे की ख़ुशी में हँस सकता था। उन आँखों में कहीं बहुत दूर से दो आँसू आए लेकिन पलकों की मुँडेर पर ही सहम कर खड़े रह गए क्योंकि अगर वह बाहर आते तो नीचे पड़े हुए पत्थरों से उलझ कर धरती में गुम हो जाते और चाँद चमकता—सितारे मुस्कराते। ताजो····

तभी पीछे से एक दबी सी आह आई जो सन्नाटे में चीख़ उठी। शमशेर एक दम घूम गया। कुछ फ़ासले पर एक औरत गिर पड़ी थी

और उसका फ़्रॉक कटीली झाड़ी में फँस गया था। शमशेर उस तरफ़ बढ़ा—शमशेर ने देखा—वह मॉली थी।

"तुम मेरा पीछा क्यों किया करती हो? देख लिया मेरा पीछा करने से क्या होता है—गिर पड़ी हो—काँटों में उलझ गई हो—ज़ख्मी हो गई हो।" शमशेर कभी इतना न बोलता लेकिन ताजो····शमशेर कुछ बदला था—चाहे पल भर को सही।

शमशेर नीचे देख रहा था और मॉली ऊपर उसके चेहरे की तरफ़ देख रही थी और उनके बीच में चाँद और कोहरे की रुपहली घाटियाँ थीं। जिस मॉली का चेहरा ऊपर निहार रहा था वह उस मॉली का नहीं था जिसे शमशेर हर रोज़ कैन्टीन या 'मेस' में देखा करता था—जिसका शरीर बिक चुका था—जिसकी आत्मा पर सुनहरी काई जम चुकी थी—जिसकी चेतनाएँ शिथिल पड़ चुकी थीं—वह चेहरा तो एक दूसरी मॉली का था—पन्द्रह साल वाली मॉली का जिसके दिल में हसरतें लाखों थीं—जिसके अरमानों के गुलाब बस खिले ही थे—जिसके सपने अभी जवान और रंगीन थे। शमशेर भी आज वह नहीं था जो कि पहले था—ताजो की याद जो आई थी तो एक सैलाब बन कर, जो बहा ले गई थी शमशेर के चारों तरफ़ खड़ी हुई नफ़रत को और अब सिर्फ़ वह शमशेर रह गया था जो इन्सान था—जिसका दिल पसीज सकता था—जिसकी आँखें पुरनम हो सकती थीं।

शमशेर को यह मालूम था कि उसके चेहरे पर क्या रूप जाग उठे हैं और वह यह नहीं चाहता था कि कोई उसका वह रूप देखे—वह डरता था अपने उस व्यक्तित्व को किसी को दिखाने से क्योंकि वह जानता था कि दुनिया को रहम या इन्सानियत के व्यवहार का कोई अधिकारी नहीं है। अगर कोई ऐसा करता है तो दुनिया उसे चूस कर—उससे फ़ायदा उठा कर कूड़े की तरह रौंद डालती है पैरों तले। शमशेर पर इतने सितम ढाए थे समाज ने कि वह उनसे—उन सबसे—नफ़रत करना चाहता था; वह पैरों तले रौंदा जाना नहीं चाहता था।

शमशेर ने मुँह फेर लिया। उसने दूसरी तरफ़ दो क़दम भी बढ़ाए—मॉली ने पतलून पकड़ी और क़दमों के ज़ोर के साथ जब मॉली भी शमशेर के साथ आगे को खिची तो उसका फ्रॉक जो काँटों में उलझा था, खिचा और फट गया। 'आज' की मॉली काँटों में फँस कर रह गई और दूसरी मॉली—हालाँकि उसकी सफ़ेद टाँगों से लाल ख़ून छलक पड़ा था—शमशेर के कपड़ों का सहारा लेकर खड़ी हो गई।

"क्या चाहती हो तुम मुझसे ? ख़रीदे हुए शरीरों से मुझे कोई दिलचस्पी नहीं है—और तुम्हारे पास है क्या !" शमशेर की आँखों में जो दो आँसू ताजो को याद करके आए थे वह फिर आँखों की ओर वक़्त की गहराइयों में वापस लौटते चले गए।

'ख़रीदे हुए शरीर'—जवान मॉली को 'आज' की मॉली का ख़्याल आ गया। उसे अपने से नफ़रत हुई और उनसे जिन्होंने उसे ख़रीद लिया था। उसकी आवाज़ में, जब उसने जवाब दिया, नमी नहीं थी, गर्मी थी; वह आवाज़ दबी-दबी नहीं थी—उस आवाज में क्रोध था।

"तो मेजर ! आपको ख़रीदे हुए शरीरों से दिलचस्पी नहीं है ? फिर आपको प्यार आत्मा से है, आप मुहब्बत चाहते हैं—और आप समझते हैं कि हमारे पास यह नहीं हैं। हो सकता है, क्योंकि आप और आप जैसों ही ने तो मेरे शरीर को ख़रीदा है। अब आपको किसी और महान चीज़ की तलाश है। आप समझते हैं कि आपने हम पर इतना सोना बरसाया है कि उसमें छोटी-छोटी आत्माएँ तो डूब ही जाएँगी। पर आत्माको, मेजर साहब, आपकी दौलत डुबा नहीं सकती। पाप मैंने नहीं किया है—पाप आपने किया है; नफ़रत करने का अधिकार आपको नहीं है—मुझे है।"

"देखिए मिस साहब....." शमशेर पहले तो अवाक् रह गया—यह लड़की जिससे उसे किसी भावना की आशा नहीं थी एकाएक उबल पड़ी थी।

"मिस साहब नहीं—मॉली-मॉली ! 'मिस साहब' कहलाए जाने का अधिकार तो आप लोग मुझसे बहुत पहले ही छीन चुके हैं !"

मॉली की आत्मा में विद्रोह जाग उठा था। मॉली तो मर चुकी थी और मुर्दों में विद्रोह जैसा गर्म जज़्बा भी उभरता ही नहीं। उनकी हर चीज़, 'जिस्म के अलावा, मर जाती है और शरीर का जीवन से ऐसा कोई विशेष सम्बन्ध नहीं। ज़िन्दगी तो बस चन्द अरमानों, थोड़ी सी भावनाओं, कुछ उम्मीदों का नाम है—ज़िन्दगी वह फूल है जो रूह की ज़मीन पर उपजता है और दिल के ख़ून से पनपता है। पर जब रुपयों की बौछार होती है और रोटी को समाज एक ऐसी मजबूरी बना देता है जिसके पीछे वह चाहता है कि हर चीज़ क़ुरबान कर दी जाय तो आत्मा और दिल दोनों बिक जाते हैं और ज़िन्दगी मर जाती है। और आदमी जब मर जाता है तो ज़िन्दगी का मोह उसमें नहीं होता—वह उदासीन हो जाता है और उसकी बेरुख़ी रेत का ठंडा तूफ़ान बन जाती है। वह रेत उसकी आँखों में—उसके दिलो, दिमाग़ पर—उसके पूरे व्यक्तित्व के चारों तरफ़ छा जाती है। और रेत के इस भयानक बवंडर के बीच में गिरफ़्तार हो कर आदमी पागल हो जाता है।

अब से सैकड़ों-हज़ारों-करोड़ों साल पहले मॉली का शरीर बिक चुका था—यह समस्या कोई आज की नयी नहीं थी, यह समस्या केवल मॉली की अपनी नहीं थी, यह समस्या केवल उन वेश्याओं की नहीं थी जो अपना शरीर बेच कर रोटी कमाती थीं—यह समस्या पूरे नारी मात्र की थी। यह समस्या उन अगनित पत्नियों की भी थी जिनकी आत्माएँ मुस्कराते हुए घरों में और भलाई के दम घोटने वाले माहोल में तड़प कर सूख जाती हैं जैसे हाल का खिला हुआ फूल—जिसमें ख़ुशबू भी होती है और रूप भी—तारीक बयाबानों में अनदेखे ही सूख कर मुरझा जाता है। और यह समस्या उन असंख्य युवतियों की भी थी जिन्होंने अभी-अभी जवानी की चमचमाती हुई हदों के अन्दर क़दम रखा था। सभ्यता और संस्कृति के इन हज़ारों बरसों के बाद इन्सान ने उन ख़ूब-

सूरत फूलों का सिर्फ़ यही एक इस्तेमाल मालूम कर पाया है कि उन्हें बेजान-नक्क़ाशी किए हुए गुलदानों में अपने कमरों की शोभा बढ़ाने के लिए रख दें या अपने कोट के 'बटन होल' में ठुरेस लें—उन फूलों को जिनमें हवा ने अपना पराग उँडेला है—जिनमें रस भरा है चाँद-सितारों की रेशमी किरनों ने—जिन्हें ज़िन्दगी दी है जवान सूरज ने—जिन पर आसमान ने अपने दिल से शबनम के करोड़ों आँसू गिराए हैं।

जब जवान धरती पर जवान इन्सान ने जन्म लिया था—जब पहले आदमी और पहली औरत ने आँख खोली थी—जब पहले सूरज की पहली किरनों ने, पहले चाँद सितारों ने, हवा के पहले ग़ुबार ने, और अनन्त बर्फ़ के दिल से रिसती हुई पहली नदी ने उनमें ज़िन्दगी जगाई थी—जब क़ुदरत का रूप संगीत बन कर सूनेपन की धड़कनों में समाया हुआ था, तब आदमी जवान था और औरत जवान थी, उनके ख़ून में ज़िन्दगी कसमसाया करती थी और उनकी पेशानी पर चमक होती थी। प्रकृति की इस सज-धज को जब वह देखते थे और पुरुष की आँखें नारी की आँखों को खोज निकालती थीं तब नारी की वह आँखें शर्म से झुक नहीं जाती थीं बल्कि उनकी आँखें बराबरी की सतह पर मिलती थीं। और जब सबसे पहले बादल घिरे थे और आसमान में बिजली कौंधी थी और हवा में नमी भी थी और सर्दी भी तब बिना बचाव के बैठे हुए नारी और पुरुष ख़ुद-बख़ुद एक दूसरे के क़रीब खिंच आते थे। एक के जिस्म की गर्मी दूसरे के जिस्म की गर्मी को पुकारती थी और अन्धेरे में बैठे हुए भी उनके चेहरे स्वाभाविक उत्तेजना से सुर्ख़ हो जाते थे। आदमी और औरत के उस पहले महा-मिलन में बिजली की तड़प थी—बादलों का उबाल था—हवा का वेग था—सूरज की गर्मी थी—चाँदनी का सा संतोष था—शबनम की मुलायमियत थी और नदी का सा अल्हड़पन। लेकिन शरीर और आत्मा के उस महामिलन के सुख को आदमी बर्दाश्त नहीं कर पाया—वह शायद उस दैवी सुख के क़ाबिल भी नहीं था। वह लोभी हो गया

और जब इन्सान को सुख का लोभ हो जाता है—जब वह उस ख़ुशी का ग़ुलाम हो जाता है—लालची हो जाता है—तब वह कमज़ोर हो जाता है—नीच हो जाता है—उसकी आज़ाद फ़ितरत उस सुख की बन्दिश के अन्दर क़ैद होकर मर जाती है। औरत के शरीर का सुख आदमी को इतना मीठा लगा कि उसने उस सुख को केवल अपना बना कर रखना चाहा। आज़ाद और मज़बूत इन्सान किसी भी चीज़ को सिर्फ़ अपने ही पास क़ैद नहीं रखना चाहते—वह सुख को निजी जायदाद नहीं बनाते—वह सुख बाँटकर मनाते हैं। आदमी ग़ुलाम भी हो चुका था और कमज़ोर भी और कमज़ोर आदमी क़ानून बनाते हैं, परम्पराओं और रूढ़ियों के क़िले खड़े करते हैं ताकि वे चीज़ें जिनके वह हक़दार नहीं हैं वे भी उनकी अपनी होकर रह जायँ। ग़ुलामी और कमज़ोरी जब नियमों और रूढ़ियों का रूप ले लेते हैं तो वह आज़ादी और मज़बूती के दुश्मन हो जाते हैं।

इसलिए औरत जो ज़िन्दगी की जान थी—ख़ूबसूरत थी—जिसमें क़ुदरत के रूप की हर छब थी—हर धड़कन थी—उसे जिस्म और रूप और सुख के लोभियों ने अपने बनाए हुए क़ानूनों में इतना सख़्त बाँध दिया कि पहले तो उन पाबन्दियों में उसका जिस्म टूटा, फिर उसकी आत्मा टूटी—टूटती गयी और आज औरत इस क़द्र ग़ुलाम हो गयी है—इतनी कमज़ोर हो गयी है—कि वह इन अस्वाभाविक बन्दिशों को या तो क़िस्मत का ख़ामोश मगर ताकतवर फ़रमान मान लेती है या समाज के इन क़ानूनों को ऐसा मान लेती हैं जिनका विरोध करना पाप है। औरत पत्नी बन जाती है—आज़ाद हवा चाँदी के ग़ुब्बारे में क़ैद हो जाती है—एक आदमी उसकी क़िस्मत का मालिक बन जाता है—उसकी ख़ुशियों से होली खेलता है और ख़ूब खेलता है और फिर मज़ा यह है कि उसे उन झूठे क़ानूनों से बल मिलता है—वह हर बात करने का अधिकारी है। पल भर को मॉली के अन्दर वह आज़ाद, आदिम औरत जाग पड़ी थी। तिरस्कार ने वक़्त की उन हज़ारहा बन्दिशों के

बर्फ़ीले पहाड़ों को पिघला डाला था और नई जागी हुई मॉली अपने प्यार करने का हक़ माँग रही थी। उसे अपने हक़ का अहसास था—वह चेतना के एक सुनहरे क्षण में यह जान गई थी कि उसके अधिकार क्या हैं। अपने अधिकारों को पहचान पाना एक महान चेतना है। इन्सान के बुनियादी अधिकारों और कर्त्तव्यों के ऊपर झूठ की मोटी-मोटी पर्त्तें जम चुकी हैं और आदमी इतना मर चुका है कि वह उन पर्त्तों में से उभर नहीं पाता चाहे कितनी भी गहरी चोट क्यों न मारी जाय उस पर।

कोहरे के समन्दरों को पार करके चाँद की किरनें मॉली के मुँह पर पड़ने लगीं थीं और सुफ़ैद चाँदनी में मॉली का चेहरा बदल गया था। खाल में एक नई चमक आ गई थी—आँखों में जिन्दगी के सोते एक बार फिर से फूट पड़े थे और उन्होंने बीती हुई ज़िन्दगी की मौत और निराशा को डुबा दिया था, नए जागे हुए प्यार ने उस चेहरे को बहुत ख़ूबसूरत बना दिया था और परिस्थितियों के उस काले नक़ाब को उतार कर फेंक डाला था जिसने एक जवान औरत की आत्मा को क़ैद कर रखा था।

शमशेर और मॉली दोनों एक ही कश्ती के मुसाफ़िर थे—दोनों की ज़िन्दगियाँ एक थीं—दोनों के ग़म एक थे। दोनों वक़्त और परिस्थितियों के शिकार थे—बस यह था कि शमशेर के अन्दर इन्सानियत के छिपे हुए सोते सूखने लगे थे—इतने ग़म सहे थे उसने—इतनी ठोंकरें खाई थीं और मॉली ने ठोंकरें तो खाईं थीं मगर उसमें फिर से जागने की ताक़त थी। हर इन्सान के अन्दर एक ऐसी ताक़त होती है जो उसे बार-बार आती हुई मौत के बावजूद भी ज़िन्दा रखती है; जो उसकी मरती हुई आत्मा में ज़िन्दगी की चिनगारियाँ फिर से भर देती है—जो गिरी हुई चीज़ों को उठाती है और उठी हुई चीज़ों को खड़ा करती है। यह ताक़त धरती की ताक़त जैसी होती है। पतझड़ बार-बार आता है—दरख़्त बार-बार नंगे हो जाते हैं—फूल बार-बार

मुरझाते हैं लेकिन बसंत बार-बार आता है और बार-बार नई कोपलें फूट पड़ती हैं—नई उमंगें जाग पड़ती हैं। इन्सानी ज़िन्दगी में भी खिज़ाँ आती है—तूफ़ान गरजते हैं और ख़त्म-सा कर देते हैं आदमी को, पर फिर से बहार आती है और आशाओं के अगनित फूल उमड़ पड़ते हैं। जब वह ताक़त ख़त्म हो जाती है तब मौत ज़िन्दगी पर फ़तह पा जाती है।

शमशेर के व्यक्तित्व के अन्दर ताक़त के वह सोते बहुत गहरे दब गए थे लेकिन मॉली जाग उठी थी उस मौत से जो उस पर छाने लगी थी, क्योंकि प्यार ने उन बुझती हुई चिनगारियों को ज़ोर से भड़का दिया था। प्यार ही तो सिर्फ़ एक ताक़त है जो बीती बहारों को वापस ला सकती है और शमशेर प्यार करना भूल चुका था—उसके सारे व्यक्तित्व के ऊपर नफ़रत छा गई थी।

और प्यार नफ़रत से बड़ी ताक़त है; ज़िन्दगी मौत से ज़्यादा बल-वान है।

शमशेर के दिल की गहरी तारीकियों में हज़ारों दिए ख़ुद-ब-ख़ुद झिलमिला उठे और हालाँकि वह चाहता नहीं था फिर भी वह ज़िन्दगी की ताक़त का मुक़ाबला कर नहीं सका।

एक ख़ूबसूरत हवा चली—पेड़ों के नरम तने गले लग गए और फूल शबनम में तरबतर हो गए।

७

मोर्चे से कुछ दूर जङ्गलों में बना हुआ मिलेटरी का एक कैम्प हस्पताल बेबस घायलों को हवाई हमलों से बचाने के लिए पूरी तरह "कम्योफ़्लाज" किया हुआ था। इर्द-गिर्द बहुत से रेत के बोरे पड़े थे। पृष्ठभूमि में एक तरफ़ दूर पर नागा पर्वत की पहाड़ियाँ और दूसरी तरफ़ लो-शाई पर्वतमाला थी। जङ्गल का यह हिस्सा बेहद ख़ूबसूरत

था मानो स्वर्ग का एक टुकड़ा हो। (सागौन) टीक के ऊँचे-ऊँचे दरख़्त, बाँस के घने झुरमुट, लहलहाती हुई ऊँची-ऊँची घास और रंग-बिरंगे फूल! मार्च का महीना था और इस महीने में वहाँ की सारी फ़िज़ा—तमाम धरती जैसे अपनी जवानी में मदहोश होकर नाच उठती है। फूलों पर हज़ार रंग और हज़ार ख़ुशबुएँ और ऊँचे-ऊँचे दरख़्तों में ऊँघते हुए पंछियों का कभी-कभी बोल उठना।

सचमुच वह स्थान स्वर्ग का एक टुकड़ा ही तो मालूम होता था। बस हाँ! कभी-कभी बेहोश पड़ा हुआ आसमान हवाई जहाज़ों की छेड़-छाड़ से कराह उठता था और कभी-कभी काफ़ी दूर पर बमों के फटने की घुटी-घुटी-सी आवाज़ आती थी जिससे ऊँचे पेड़ों पर सोते हुए पंछी खड़खड़ा कर जाग उठते थे और काफ़ी देर तक चिड़ियों की चहचहाहट और जानवरों की चीख़-पुकार चलती रहती थी। दूर पर कहीं कहीं धुआँ—कहीं सुर्ख़ और गाढ़ी-गाढ़ी लपटें। और इस सब से होश आ जाता था कि यह स्वर्ग का टुकड़ा नहीं है—इन्सानों की दुनिया है—उस इन्सान की नहीं जो प्रेम का प्रतीक है बल्कि उसकी जो हैवान बन चुका है—वह आदमी जो बनाने से ज़्यादे मिटाने में होशियार है—जो प्रेम का देवता नहीं, नफ़रत का शैतान है।

पता नहीं क्यों, कैसे और कहाँ निर्माण की आत्मा विनाश के गाढ़े धुंध में खो गई थी। हस्पताल के अन्दर कोई पचास चारपाइयाँ थीं और इनमें से हरेक पर घायल पड़े थे। काफ़ी ख़ामोशी थी, सिवाय इसके कि कभी कोई घायल कराह उठता था—कभी नर्सों के चलने की आवाज़। दिन की पलकें मुँद रही थीं—सारे पंछी एक बार ज़ोर से चहचहा कर ख़ामोश हो गए थे—खुली हुई खिड़कियों से होकर बाहर के उन हज़ार फूलों की भीनी-भीनी ख़ुशबू अन्दर बहती हुई चली आ रही थी। सब कुछ थका हुआ मालूम होता था और एक भारी-सी नींद दिमाग़ पर छाने लगती थी। कभी नींद खुल जाती थी और लोग दोहरी मेहनत से अपने काम में लग जाते थे—और कभी वह नींद उनकी आख़िरी

नींद होती थी—जिसके बाद लोग कहते हैं कि शांति है। दुनिया के भिन्न-भिन्न भागों में—फ्रांस, जर्मनी, रूस, इटली, अफ्रीका, बर्मा, चीन और जापान की ज़मीनों पर इस वक़्त भी हज़ारों, लाखों इन्सान खून में लथ-पथ अपनी पागल जिन्दगी से थक कर सो रहे होंगे—शायद अब तो उन्हें शान्ति मिल चुकी होगी ? कौन जाने ! शायद ऐसी कोई नींद नहीं है जो कभी खत्म न हो—ऐसा कोई नशा नहीं जिसका सुरूर हमेशा क़ायम रहे। हर नींद के बाद वही पागलपन—हर नशे के बाद वही बेचैनी ! किसी ने इन्सान को शाप दे दिया था कि नींद और नशा दोनों ही खत्म हो जाएँगे और अपनी हसरतों के रेगिस्तान में उसके लिए कहीं साया नहीं होगा और उसकी बेचैन आत्मा हमेशा भटकती रहेगी।

* * *

"....सरकार को बेहद अफ़सोस है कि मेजर शमशेर जिन्होंने इस लड़ाई में अपनी बहादुरी और वफ़ादारी का बहुत अच्छा परिचय दिया, वह बहुत ज़्यादा ज़ख्मी हो गए हैं और इसलिए वह अब 'ऐक्टिव सर्विस' के क़ाबिल नहीं रहे। सरकार इसलिए बहुत इज़्ज़त के साथ...."

पास की कैम्प टेबिल पर रखे हुए शीशे के गुलदस्ते को शमशेर ने फेंक दिया और गुलदस्ता चकनाचूर होकर बिखर गया। सबसे आख़िरी मोर्चे में उसकी बाईं आँख और पैर बेकार हो गए थे और दाहिने गाल पर चोट का एक लम्बा-चौड़ा निशान बन गया था जो ऊपर टँगी हुई रोशनी में बेइन्तहा भद्दा लग रहा था—उधड़े हुए कोढ़ की तरह।

तो सरकार ने अब उसे पेन्शन दे दी थी—बहुत इज़्ज़त के साथ—क्योंकि अब वह मौत बरसाने के क़ाबिल नहीं रहा था, क्योंकि अपाहिज हो जाने के बाद दुनिया को उसकी ज़रूरत नहीं थी। नफ़रत की विश्व-व्यापी आग में वह सिर्फ़ एक शोला था जो बुझ रहा था और इसलिए उस आग को अब उस बुझे हुए पत्थर की कोई ज़रूरत नहीं थी।

लेकिन ऊपर से बुझ जाने का मतलब यह तो नहीं होता कि धधकते हुए शोले के अन्दर की आग ही ख़त्म हो गई—इसका यह मतलब क़तई नहीं होता। लपटें ऊपर से बुझ जायँ—धधकता हुआ अंगार राख होकर बिखर पड़े मगर राख के हर एक ज़र्रे में वह तमाम आग अलग-अलग सिमट आती है और धधका करती है—ज़्यादा ज़ोर से, और हालाँकि दुनिया के नादान क़दम उस राख को ठंडा और मरा हुआ समझ कर रौंदते चले जाते हैं मगर राख की रूह में जो प्रचंड अंगारे हैं वे एक ज़बरदस्त पीड़ा के साथ हमेशा लहकते रहते हैं। तन्हाई में जलने वाली आग में जलन ज़्यादा होती है।

शमशेर के दिल की आग नफ़रत का वह ज्वालामुखी था जो दुनिया की नज़रों से छिपा था मगर दुनिया को तबाह कर डालना चाहता था। लड़ाई में वह किसी आदर्श को लेकर शामिल नहीं हुआ था—न वह अपने ख़ुद की बेरोज़गारी की समस्या को हल करने के लिए फ़ौज में भर्त्ती हुआ था। लड़ाई तो शमशेर के लिए सिर्फ़ एक ज़रिया थी जिससे वह अपना ज़हर उगलना चाहता था—जिससे वह इस बेमाने दुनिया का अन्त करना चाहता था। क्योंकि तमाम दुनिया से उसे नफ़रत थी—उन लोगों से जो ख़ून चूसते थे, घर उजाड़ते थे और सोने की मीनारें खड़ी करते थे और उनसे भी जो इतने मर चुके थे—इतने निकम्मे थे—कि अपना ख़ून चुसवाने के लिए तैयार थे—जो अपना घर उजाड़ने वालों को ऐड़ियों तले रौंद नहीं सकते थे, जो सोने की मीनारों की काली साया में तड़प-तड़प कर सिर्फ़ आँसू ही बहाना जानते थे। दुनिया में अब सिर्फ़ यही दो तबक़े बाकी रह गए थे इसलिए शमशेर को पूरी दुनिया से नफ़रत थी।

प्यार तो शमशेर की ज़िन्दगी में गर्मी के बादल की तरह आया था जो न कहीं टिक सकता था, न बरस सकता था। शमशेर उन जज़्बाती इन्सानों में से था जिनके अन्दर परिस्थितियाँ भावनाओं को ख़त्म नहीं कर पातीं बल्कि चोट मारकर उन्हें और उभार देती हैं। इस-

लिए जब शमशेर को प्यार नहीं मिला था तब वह जज़्बा मरा नहीं था—ख़त्म नहीं हो गया था बल्कि उलट कर और दूनी ताक़त से नफ़रत में बदल गया था। अब तक नफ़रत शमशेर की उदास और पागल ज़िन्दगी में इतनी समा चुकी थी—मारने का, ख़ून बहाने का, चीख़ें सुनने का वह अब तक इतना आदी हो चुका था कि जलते हुए घरों को देख कर, उजड़े हुए मकानों को देख कर, मौत से बिगड़े हुए चेहरे देख कर वह ख़ुश होता था कि दुनिया ख़त्म हो रही है और वह हँसता था—ठहाके मारता था।

लेकिन अब सरकार को मेजर शमशेर की कोई ज़रूरत नहीं थी....

पास रखी हुई 'क्रचेस' को लगा कर शमशेर उठा और लड़खड़ा कर फिर बैठ गया। जो ख़ुद अपने बल पर अब तक चले हों उन्हें दूसरे का सहारा लेकर चलने की आदत डालने में कुछ देर लगती है—कुछ उलझन होती है। मज़बूत आदमी को कमज़ोरी की आदत डालना बहुत ज़्यादा मुश्किल होता है। शमशेर भी एक मज़बूत आदमी था—एक ताक़तवर इन्सान जिसके ऊपर से परिस्थितियों के करोड़ों तूफ़ान गुज़रे थे लेकिन न कभी वह हिला था—न कभी उसने सिर झुकाया था—पर आज वह मजबूर था। शमशेर ने 'क्रचेस' उठाकर दूर फेंक दिए।

एक ज़बरदस्त अकेलापन, एक काली भयानक रात की तरह उसके सारे व्यक्तित्व पर छा गया। मुस्कराहटें—ख़ुशी के ख़ूबसूरत तराने और रंगीन नग़मे दुनिया न जाने कब उससे छीन चुकी थी—अब तो उसने अपने कानों को चीख़ों—चिल्लाहटों और बमों के धड़ाकों का आदी बना लिया था और अब....अब मौत की वह भयानक चीख़ें भी वक़्त ने उससे छीन ली थीं। उसके दिल और उसके दिमाग़ में अब एक ऐसी तारीक ख़ामोशी समाने लगी थी जो कराहने से और चीख़ों से ज़्यादा बुलन्द थी—ज़्यादा भयानक थी।

ख़ामोशी....अकेलापन....मौत !

शमशेर एकदम उठा और लड़खड़ा कर गिर पड़ा—वह भूल गया था कि 'क्रचेस' के बिना वह चल नहीं सकता था और 'क्रचेस' दूर पड़े थे—वह कमज़ोर हो चुका था। ज़िन्दगी में दूसरी बार आँसू शमशेर की आँखों में आए और कमरे की तन्हाई में ख़ामोशी से सूख कर रह गए। ख़ामोशी....अकेलापन....उदासी और मौत !

पर ज़िन्दगी में ऐसा कुछ हमेशा ज़रूर होता है जो टूटती हुई आशाओं को—हारी हुई ताक़तों को फिर से जोड़ देता है—बढ़ावा दे देता है—उठाकर खड़ा कर देता है। वही ताक़त है जो ज़िन्दगी के दामन पर छाती हुई मौत की छाया को हटा कर दूर करती है। जब तक वह शक्ति रहती है तब तक इन्सान ज़िन्दा रहता है।

और अब, जब कि शमशेर की जज़्बाती ज़िन्दगी अपनी सरहदों पर दम तोड़ रही थी और तन्हाई और मौत की तारीकियाँ अनन्त मालूम पड़ रही थीं, तभी वह ताक़त उसी अन्धेरे में से उठी थी उजाला लेकर।

मॉली—दूर छूटी हुई मॉली और उसका प्यार जो वक़्त के खंडहरों में से बग़ावत करके उभरा था और जिसका तिरस्कार शमशेर का नफ़रत भरा दिल भी नहीं कर सका था। वह प्यार और वह मॉली तो अभी ज़िन्दा थे और वह शमशेर को यूँ नहीं मरने दे सकते थे। इस मोर्चे पर आने के दो ही दिन पहले तो शमशेर को प्यार की वह ताक़त मिल पाई थी और तभी दरिन्दों ने उसे झपट लिया था उस कोमल आलिंगन से, मौत की लपटों में झोंकने के लिए।

लेकिन आज जब दुनिया ने उसे बुझी हुई राख समझ कर कोने में फेंक दिया था—जब एक बार फिर मौत उसकी ज़िन्दगी पर छाने लगी, तभी वह प्यार बसन्त की पुकार की तरह उन तारीकियों को चीरता हुआ चला आया था। शमशेर शून्य की तहों में सबसे नीचे पड़ा था और प्यार का फूलों भरा हाथ उसे फिर से उठाने के लिए आगे बढ़

रहा था। शमशेर को उन हाथों की ज़रूरत थी—कमरे के अकेलेपन में उसने अपने हाथ ऊपर उठा दिए।

लेकिन उठे हुए हाथ गिर भी गए—शमशेर ने आज तक किसी का दामन थामने के लिए हाथ नहीं बढ़ाए थे—इसके पहले वह कभी गिरा भी तो नहीं था। चोटें तो बहुत लगी थीं—ज़ख्मी भी हुआ था, लेकिन गिरा नहीं था। लेकिन आज तो वह गिर पड़ा था—गिर कर उसे उठना भी था—मगर क्यों? क्या सिर्फ़ दूसरे का सहारा लेकर ही उठा जा सकता है? क्या दूसरे का सहारा लेकर उठने से यह बेहतर न होगा कि वह गिरा पड़ा रहे और उसी हालत में मर जाय? शमशेर इन सवालों का जवाब नहीं दे सकता था मगर ज़िन्दगी दे सकती थी। प्यार की वह ताक़त जो उसे उठाने के लिए आगे बढ़ रही थी वह सिर्फ़ मॉली के व्यक्तित्व से ही नहीं उभरी थी—शमशेर के अन्दर भी उस ताक़त की जड़ें थीं; इसलिए उस ताक़त का विरोध शमशेर कर नहीं सकता था। उस ताक़त से आसरा पाकर—उसके बल पर—उठ पड़ना यह साबित नहीं करता था कि उठने वाला आदमी कमज़ोर है—वह यह साबित करता है कि उठने वाला आदमी अभी मरा नहीं है—ज़िन्दगी के सुराग़ अभी उसमें पाए जा सकते हैं—अभी वह ज़िन्दा हो सकता है।

* * *

वही सफ़ेद पुता हुआ मकान जिसकी दीवालों से प्लास्टर जगह-जगह से छूट गया था—वही आस-पास के हरे-भरे सुहाने मैदान और पहाड़ियाँ—वही क़ुदरत का मनोहर रूप—वही इन्सानी जन्नत—लेकिन शमशेर का इस सब से कोई ताल्लुक़ नहीं था। वह तो कुछ ऐसा था कि जैसे कोई भटका हुआ राही अँधेरे में सँभल-सँभल कर अपनी मंज़िल का रास्ता खोज रहा हो और अपनी तलाश में इतना भूला हुआ हो कि अपने आस-पास की चीज़ों से बिल्कुल बेख़बर हो।

मकान में पहुँच कर शमशेर ने दरवाज़े पर दस्तक दी—एक नौकरानी ने दरवाज़ा खोला।

"मिस मॉली हैं?"

"जी—हाँ!"

"कहाँ?"

"ऊपर!"

"कह दो मेजर शमशेर आए हैं!"

"मेजर शमशेर! ओह शमशेर?" मॉली की आँखों में आँसू आ गए—लोग कहते हैं कि ख़ुशी की इन्तहा में आँसू आ जाते हैं। शमशेर आज मॉली के पास आया था—देवता ख़ुद पुजारी के पास चला आया था—तो सच मॉली के प्यार में ताक़त है—उसका प्यार सच्चा है। मॉली शमशेर की ख़बर न पाकर कुछ दिनों से बहुत परेशान थी—उसने सुना था कि मोर्चे पर बहुत भयानक लड़ाई हुई—काश शमशेर....! मगर नहीं—शमशेर तो आज ख़ुद उसके पास आया था—वह ख़ुशी से कमरे में झूम उठी—नाच उठी। नौकरानी चकरा गई।

मॉली दरवाज़े की तरफ भाग पड़ने को हुई मगर आज—आज वह शमशेर को ही ऊपर बुलाएगी—उसे इतना गर्व हो गया था अपने प्यार पर—

"जाओ! मेजर साहब को ऊपर भेज दो।" और दरवाज़े की तरफ़ पीठ करके मॉली बैठ गई—उसके दिल में हज़ारों अरमान जो मुद्दत से क़ैद थे खिल पड़ने के लिए बेसब्र हो रहे थे—हज़ारों फूल मुस्कराने के लिए बेताब थे—प्यार की हज़ारों मौजें सैलाब बन कर उमड़ पड़ना चाहती थीं। इतनी चीज़ों को अपने धड़कते हुए दिल में समेटे हुए मॉली शमशेर का इन्तज़ार कर रही थी।

ज़ीने पर चढ़ने में शमशेर को बहुत तकलीफ़ हो रही थी—वह हर सीढ़ी पर दर्द से कराह उठता था लेकिन सीढ़ियाँ ख़त्म होती जा रही थीं....और शमशेर मॉली के कमरे के दरवाज़े पर खड़ा था—

"मॉली !"

मॉली मुड़ी नहीं—इन्तज़ार में सिहर उठी। लँगड़ाता-लड़खड़ाता हुआ शमशेर मॉली की कुर्सी तक पहुँचा और उसने अपने हाथ मॉली के कन्धों पर रख दिए। मॉली काँप गई—शराब के समन्दर उबल पड़े—हज़ारों तारे आसमान में थिरक कर नाच उठे—संगीत के न जाने कितने मादक सुर—न जाने कितने रसदार नग़मे झनझना उठे और प्यार के अमृत में जी भर के नहाई हुई मॉली बड़े अन्दाज़ से और बड़े प्यार से अपने देवता का स्वागत करने को मुड़ी और....और चीख़ पड़ी।

शमशेर सन्न रह गया और फिर ठहाका मार कर हँस पड़ा—उस हँसी में सुख नहीं था, प्यार नहीं था—क्रोध था, नफ़रत थी। शमशेर ने मॉली को कन्धों से पकड़ लिया और झकझोर कर बस एक दफ़ा बोला—"बेवफ़ा !" और ज़ोर से ढकेल दिया और फिर लड़खड़ाता हुआ कमरे के बाहर चला गया। मॉली चीख़ पड़ी—"शमशेर !"

लेकिन शमशेर न रुका—वह चला गया। वह ताक़त—वह खिंचाव एक बार फिर एक कड़ुवा झूठा, भ्रम निकला—शायद ! क्योंकि शमशेर जिस हालत में था उसमें वह पूरे स्वागत के अलावा किसी दूसरी चीज़ से ख़ुश नहीं हो सकता था और हालाँकि मॉली का प्यार सच्चा था फिर भी शमशेर की बदली हुई सूरत देख कर मॉली के मुँह से चीख़ निकल पड़ी थी—और उस चीख़ ने एक ऐसा तमाचा मारा था शमशेर के मुँह पर जिसको उसका ज़ख्मी दिल बर्दाश्त नहीं कर सकता था। जब वेदना बहुत गहरी होती है तो आदमी ज़रा सा भी मज़ाक बर्दाश्त कर नहीं पाता अपने जज़्बातों के साथ।

मॉली अपने कमरे में आँसू बहाती रही—उसके वह करोड़ों अरमान एक दम मुरझा गए थे। और शमशेर ज़िन्दगी की वीरान घाटियों में फिर भटक कर चला गया—एक नई चोट लेकर—नफ़रत का ज़हर और ज़्यादा पीकर।

भाग ३

१

पहाड़ी रास्ते पर घोड़े के सधे हुए क़दम एक साथ पड़ रहे थे—खट....खट....खट! 'बस' तो मील भर नीचे ही रुक जाती है क्योंकि शेषनाथ के बाद न तो मोटर की सड़क है और न उसके पार जाने की लोगों को ज़रूरत ही महसूस होती है। शेषनाथ सभ्यता की आख़िरी सरहद है और उसके बाद हिमालय की लम्बी-चौड़ी- अनन्त फैली हुई पर्वत मालाएँ हैं। यहाँ न शहर मिलते हैं, न क़स्बे, न गाँव; बस कभी चन्द झोपड़ियाँ और घर और इन्सान और कभी वह भी नहीं। ऐसा लगता है मानों सभ्यता ने उन ऊँचाइयों तक चढ़ने की कोशिश में आधे रास्ते में ही दम तोड़ दिया। शेषनाथ में ज़रूर एक छोटी सी बस्ती है और 'बसों' में यात्री सिर्फ़ वहीं तक के लिए आते हैं। वहाँ से जो बिना बनी सड़क मधुगाँव को गई है उस पर साल में सिर्फ़ एक-दो बार ही लोग चलते नज़र आते हैं वरना वैसे वह सड़क हमेशा सूनी ही रहती है—जैसे उस सड़क पर बिखरे हुए पत्थर, किनारे लगे हुए पेड़-पौदे सब कुछ आदमी से डरते हों—शरमाते हों।

उस अजनबी रास्ते पर एक अजनबी के घोड़े के चलने की आवाज़ गूँज रही थी और रास्ते के साथ-साथ आसमान में गुम होती जा रही थी। उस रास्ते के एक तरफ़ एक ऊँचे टीले की पीठ थी जिस पर देवदार के बेशुमार दरख़्त थे और दूसरी तरफ़ सैकड़ों फ़ीट गहरा खड्ड जिसके उस पार फिर से पहाड़ों की ऊँची-ऊँची विशाल क़तारें थीं जो निगाहों की आख़िरी हदों तक फैली हुई थीं। एक डरावनी सी ख़ामोशी थी जो वहाँ से सबसे दूर पर खड़े हुए शिखरों तक फैली हुई थी—वह ख़ामोशी उनमें से सबसे ऊँचे पहाड़ से ज़्यादा बुलन्द थी—उस ख़ामोशी में ऐसा फैलाव था जो उस तमाम विस्तृत सूनेपन से ज़्यादा विशाल था—वह ख़ामोशी डरावनी थी और उस ख़ामोशी का आदर

करना पड़ता था वैसे ही जैसे पूर्व ऐतिहासिक काल में, जब दुनिया नयी-नयी थी, मासूम इन्सान सूरज से, चाँद तारों से, बादल और बिजली से डरता भी था और उनका आदर भी करता था। उस ख़ामोशी में बुद्ध के पथरीले चेहरे-जैसी शांति और निस्तब्धता थी। और सुकून के इस साम्राज्य में सुनहरी धूप भरी हुई थी ज़िन्दगी की लहर की तरह और असंख्य पेड़-पौदे फूल और पत्तियाँ—हर चीज़ में वह लहर धड़कन बन कर समाई हुई थी। दूर के ऊँचे पहाड़ों के बर्फ़ीले माथे पर सूरज सोने की तरह चमचमा रहा था और उस अनन्त फ़ासले के बीच-बीच में अँगड़ाई लेती हुई रंगीन वादियों में कोहरे की परियाँ पड़ी हुई थीं जिनके सफ़ेद बालों में सूरज की किरनें एक सतरंगी दरिया में पिघली जा रही थीं। इतना अलौकिक सौन्दर्य इन्सान की सभ्य दुनिया की हदों के बाहर है—इस रूप को—क़ुदरत की इस छबि को पूजने को जी चाहता है—इसको देखकर जितने विकार, जितनी गन्दगियाँ हैं, सब धुल जाती हैं और एक अजीब-सा सुकून—एक अजीब-सा संतोष रूह पर, दिल पर और दिमाग़ पर छा जाता है और वह हज़ारों जाल और फ़रेब, परेशानियाँ और मुसीबतें—वह बेमाने हविस, सब कुछ इस जन्नत के बाहर छूट जाता है—यहाँ तो इन्सान सिर्फ़ अपने आज़ाद और नग्न रूप में एक छोटे बच्चे की तरह खड़ा रहता है जो मग्न आँखों से प्रकृति का सौन्दर्य निहारा करता है।

लेकिन दरअसल आदमी बहुत बदक़िस्मत है। वह जानता है मगर जानकर भी अपनी उलझनों में इतना गिरफ़्तार रहता है कि वह अपनी नक़ली ज़िन्दगी परेशानियों और ग़मों के साए में गुज़ार कर मर जाता है, बिना अपने को जाने। वह एक अनन्त रेगिस्तान में जनम-जनम भटकता रहता है और वासना और हविस कोड़े मार-मार कर उसे आगे ढकेलते रहते हैं ताकि वह कहीं रुक न पाए—अपना असली रूप, अपनी असली ताक़त पहचान न पाए। उसकी सभ्यता उसका कोढ़ है जिसे वह ज़बरदस्ती ओढ़े हुए है और उस कोढ़ ने उसकी आज़ाद

फ़ितरत और तन्दुरुस्त जिस्म को नासूरों ने गला डाला है। उसकी कोई सही मान्यताएँ नहीं है—कोई सच्चा आदर्श नहीं है। सच से इन्सान डरता है और अपने नंगे मगर आज़ाद और तन्दुरुस्त व्यक्तित्व को दिखाने से शर्माता है। झूठ और फ़रेब उसकी दुनिया के क़ायदे और क़ानून हैं—लगता है कि सारी इन्सानियत ने कोई ऐसा पाप किया है जिसकी वजह से वह नरक की काल कोठरी में हमेशा के लिए बन्द कर दिया गया है।

शमशेर भी उस नरक में पैदा हुआ था। पैदा होने में उसका कोई दोष नहीं था और न ही इसमें उसका कोई दोष था कि उसके अन्दर एक जानदार व्यक्तित्व था—ताक़तवर जज़्बात थे और झूठ को पहचान लेने की और उससे नफ़रत करने की शक्ति थी। दुनिया ने शमशेर को पहचान लिया था—उन्होंने जान लिया था कि उनके मुस्कराते चेहरों के पीछे जो ज़हर है और क़ीमती कपड़ों के नीचे जो कोढ़ है वह उससे छिपा नहीं है। इसलिए सारे समाज ने उसे बाग़ी क़रार दे दिया था और उनके क्रोध ने उस पर लाखों सितम ढाए थे। कमज़ोर आदमी जब नाराज़ होता है तो उसकी कमज़ोरी—उसकी बदसूरती और ज़्यादा उभर आती है और भलाई के—ख़ूबसूरती के—न्याय और हमदर्दी के नक़ली नक़ाब टूट कर बिखर जाते हैं। शमशेर को जितनी तकलीफ़ उन ज़ुल्मों से नहीं हुई थी उससे ज़्यादा आदमी की उस कुरूपता से हुई थी जिसका भयानक दृश्य उसकी आँखों के सामने आया था। वह और लोगों की तरह टूट तो नहीं सका था लेकिन उसका विद्रोह नफ़रत के ज्वालामुखी में बदल गया था जिसके छिपे हुए अंगारों ने उसके अन्तर को फूँक कर राख कर डाला था।

और एक सीमा ऐसी आई जब वह उस बदसूरती को—उस कोढ़ को और ज़्यादा बर्दाश्त न कर सका। उसके केवल ज़ख़्म ही नहीं लगे थे, उसकी तमाम मान्यताएँ—सब आदर्श चकनाचूर हो गए थे। वह सिर्फ़ पूरा प्यार और पूरी शांति चाहता था। शांति उसे नहीं मिली थी

—उसे सिर्फ़ अंगारे मिले थे और प्यार—प्यार करना तो दुनिया जैसे बिल्कुल भूल चुकी थी और इसलिए शमशेर का दिल, जो हर चीज़ पर प्यार का इतना अमृत बरसा सकता था कि सब कुछ उसमें बिल्कुल डूब जाय, उसे ऐसी कोई चीज़—कोई हस्ती—नहीं मिली थी जो प्यार की दो बूँदों को भी अपने अन्दर समेट सकती। ताजो तो उसे मिली थी लेकिन दुनिया ने उसे फ़ौरन ही ज़बरदस्ती खींच कर समेट लिया था। और मॉली—शमशेर को धोखा हुआ था उससे। मॉली का प्यार सम्भवतः सच्चा था पर शमशेर की हालत ऐसी हो चुकी थी जिसमें वह मॉली की एक चीख़ का भी ग़लत मतलब निकाल सकता था। और प्यार की कमी ने उसके दिल के अन्दर एक ज़बरदस्त वीराना बना दिया था जिसमें सूखी लपटें जल रहीं थी—नफ़रत की कड़ुवी आग। और दुनिया—उसने उसे मरी मक्खी की तरह निकाल फेंका था जब उसका शरीर इस बात के नाक़ाबिल हो गया था कि वह मौत बरसा सके।

इसलिए अस्पताल छोड़ने पर शमशेर बिल्कुल अकेला था और एक हद ऐसी आ चुकी थी जब वह दुनिया में और ज़्यादा रहना बर्दाश्त नहीं कर सकता था—वह नहीं चाहता था कि वह बदसूरती और बेइ-मानी, झूठ और फ़रेब ज़्यादा देखे। इन्सानियत के जिस्म में से रिसते हुए अगनित नासूरों को देखते-देखते उसकी आँखें जलने लगी थीं। अब और ज़्यादा वह इस गन्दी दुनिया में—इस नरक में—रहना नहीं चाहता था। वह भागना चाहता था—डर से नहीं बल्कि नफ़रत से। पलायन को लोगों ने कमजोरी बताया है लेकिन शायद यह कहते वक्त वह अपनी तरफ़ नहीं देखते। शमशेर के दिल में कभी यह उमंग थी—आशा थी—कि इस ज़ुल्म से—बदसूरती से—झूठ और अन्याय से तंग आकर लोग बगावत कर उठेंगे—फूठ पड़ेंगे और एक इतना ज़बरदस्त तूफ़ान खड़ा कर देंगे जिसमें यह झूठा समाज टूट-फूट कर चकनाचूर हो जायगा और उन खंडहरों में से एक ऐसी हसीन दुनिया—एक ऐसा

ख़ूबसूरत इन्सान उभरेगा जो वास्तव में सच होगा। लेकिन वक़्त बीतता गया और तूफ़ान तो क्या—एक हल्का सा झोंका भी नहीं लहराया। शमशेर को घिन हो गई उन गिरे हुए इन्सानों से जिनकी रीढ़ टूट चुकी है—जो उठ नहीं सकते—बग़ावत नहीं कर सकते, झूठ और अन्याय के ख़िलाफ़।

और इसलिए शमशेर, जिसने कुछ न पाया इस दुनिया में, उसे छोड़ कर चल पड़ा—दुनिया की निगाहों से दूर बसने के लिए।

२

मधुगाँव कुछ पहाड़ी मकानों की छोटी-सी बस्ती थी—बहुत ऊँचाई पर एक वादी में बसी हुई। खेती वहाँ बहुत मामूली सी होती थी—लगभग नहीं के बराबर और वहाँ रहने वाले सौ-पचास लोग ख़ुशहाल नहीं थे—लेकिन ख़ुश थे—बहुत ख़ुश थे। उनका मुख्य पेशा भेड़ और बकरियाँ पालना था और उन्हीं से उनकी जीविका चलती थी। भोर से सूरज डूबने तक मर्द अपनी भेड़-बकरियों की टोलियाँ लेकर पहाड़ों पर चराने ले जाते थे और औरतें घर का काम-काज करती थीं और ऊन कातती-बुनती थीं। दोपहर में जब सूरज की किरनें सारी वादी को रंगीन बना देती थीं तब बाँसुरी की धुनें सारे माहोल में ज़िन्दगी का संगीत बन कर समा जाती थीं और ऊन कातते या बरतन मलते वक़्त औरतों के मुँह से प्यार के मीठे-मीठे गीत अनजाने ही फूट पड़ते थे। उस वादी में रहने वाले लोगों की ज़िन्दगी एक सपना था जिस पर ग़म के काले साये कभी नहीं पड़े थे। उन्हें अपनी ग़रीबी का कोई एहसास नहीं था। उनके दिल मुस्कराहटों से और संगीत से भरे पूरे थे और दक्खिन की तरफ़ चट्टानों के पथरीले सीने से उभड़ते हुए झरनों पर इकट्ठी हुई नौजवान लड़कियों के क़हक़हे दिन मुँदते तक उस वादी में गूँजते रहते थे। और उनकी रातों में प्यार की मदहोश कर

देनेवाली जवान शराब थी। वह अपनी दुनिया के देवता थे—और उनकी दुनिया उनकी जन्नत थी। यह स्वर्ग उस स्वर्ग से ज़्यादा पाक और ख़ूबसूरत था जिसकी कल्पना दुनिया में बसने वाले लोग किया करते हैं, जिसमें वह समझते हैं उनका भगवान रहता है और जहाँ वह अपनी झूठी पूजा से पहुँचना चाहते हैं। वह यह भूल जाते हैं कि धरती ही स्वर्ग है और इन्सान ही भगवान है कि जिसे अपनी ताक़त का—अपने रूप का पता नहीं है और जिसने अपनी नादानी में स्वर्ग को नरक बना दिया है। यह स्वर्ग कभी भी पत्थर के भगवान को पूज कर नहीं पाया जा सकता—यह स्वर्ग तभी पाया जा सकता है जब वह उन सब आदमियों को आज़ाद कर दें जिन्हें उन्होंने ग़ुलाम बना रखा है—जिन्हें भूखा मार कर वह अपना पेट भर रहे हैं—जिनके ख़ून से वह सोने की ईंटें ढाल रहे हैं और जब वह उन सब औरतों को उनके हक़ दे दें जिन्हें उन्होंने वेश्या और इससे भी बदतर पत्नियाँ बना कर छोड़ रखा है। क्योंकि आदमी और औरतें, देवता और देवियाँ हैं जिनकी आज़ादी से मज़ाक नहीं किया जा सकता।

लेकिन मधुगाँव में बसने वाले लोग तो सच्चे देवी और देवता थे, जिन्हें पाप और फ़रेब छू तक नहीं गया था। उनके यहाँ कोई क़ानून नहीं थे क्योंकि देवता क़ानूनों में नहीं बाँधे जा सकते—उन्हें उन क़ानूनों की ज़रूरत भी नहीं होती—क़ानून तो सिर्फ़ कमज़ोर और लालची लोग अपने बचाव और फ़ायदे के लिए बनाते हैं। उनके जो रस्म-रिवाज थे वह सिर्फ़ प्यार की बुनियादों पर बने हुए थे। वह केवल प्यार करना और मुस्कराना ही जानते थे। गर्मी के दिनों में जब पूनम का चाँद आसमान के नीले घूँघट से उभरता था तो एक डंके की आवाज़ उस निस्तब्धता से खेलती हुई तमाम वादी में छा जाती थी और पहाड़ों के दिलों में गूँजती हुई गुम हो जाती थी—बस्ती के बीचोबीच एक बड़ी सी आग धधक पड़ती थी और बस्ती के जवान लड़के-लड़कियाँ संगीत और नृत्य की मदिरा में डूब जाते थे। जब तक

चाँद धीमा पड़के डूब नहीं जाता था तब तक बाँसुरी के रसीले बोल, झाँझ का मीठा शोर, घुँघरुओं की रुनझुन और प्यार के मतवाले तराने गूँजते रहते थे। मधुगाँव में बसने वालों का यह एक ख़ास त्योहार था।

* * *

राजीव कला का पुजारी था—कला की सेवा में उसने अपना-सारा जीवन, सब कुछ अर्पित कर दिया था। जब उसका 'ब्रुश' कैनवेस पर चित्र बनाने के लिए उठता तब वह बस सौन्दर्य की एक ज़रा सी छवि को पकड़ कर अपनी कला में और रंगों की बन्दिश में उतार लेना चाहता था ताकि उसकी पूजा सार्थक हो जाय—ताकि इन्सान उन चित्रों को देख कर सौंदर्य समझ सके और अपनी ज़िन्दगी सुखी बना सके। लेकिन कला की सेवा में उसे ज़ाती तौर पर अनुभव की टेढ़ी-मेढ़ी घाटियों से गुज़रना पड़ा था क्योंकि कला कभी भी उधार लिए हुए अनुभवों पर नहीं चलती। सौन्दर्य और सत्य की खोज में कलाकार को अगनित अनुभवों से गुज़रना पड़ता है और तभी वह अनुभव कलाकार के व्यक्तित्व में से छन कर सत्य की प्रतिमा खड़ी कर पाते हैं। राजीव के मासूम दिल में पहले सौंदर्य के हसीन से-हसीन सपने आते थे—एक बहुत मधुर कल्पना से उसकी कला को प्रेरणा मिलती थी और तसब्वुर के उन रंगीन महलों के संगमरमर के फ़र्श पर हज़ारों परियाँ नाचा करती थीं—गुलाब और नरगिस हमेशा मुस्कराते थे—चाँद वंशी बजाता था और सितारे क़हक़हे लगाते थे लेकिन उस रंगीन जन्नत में इन्सान कहीं नहीं था। इन्सान उसमें क्यों नहीं था? यह सवाल जब उठा तो सीप की हज़ारों बन्दिशें, जिन्होंने राजीव को कल्पना के स्वर्ग में क़ैद कर रखा था, टूट गईं क्योंकि तसव्वुर की वह रुपहली जन्नत तो एक ऐसी चीज़ थी जिसे दुनिया ने उसके चारों तरफ़ इसलिए खड़ा कर दिया था ताकि वह सच न देख सके—वह स्वर्ग निजी और सच्चे अनुभवों पर नहीं बना था, इसलिए वह टिक नहीं सकता था

क्योंकि राजीव एक कलाकार था और उसे सत्य की तलाश थी। और कलाकार की आँखें जब खुलीं तो उसने स्वर्ग नहीं देखा, उसने तो एक ऐसा नरक देखा जिससे उसकी आत्मा पर फफोले पड़ गए और सौंदर्य के सपने चूर-चूर होकर बिखर गए।

तो क्या सौंदर्य नहीं है ? इन्सान सुख और स्वर्ग के क़ाबिल नहीं है ? राजीव को विश्वास था कि सौंदर्य है और इन्सान भी स्वर्ग के क़ाबिल है क्योंकि वह तो स्वयं भगवान है लेकिन यह सब वह भूल चुका है। सौंदर्य की तलाश में कलाकर निकल पड़ा। घूमते-घूमते, खोजते-खोजते वह मधुगाँव पहुँचा और यहाँ आकर उसके विश्वास और साधना को सफलता मिली। जिस आदर्श की उसे तलाश थी उसे वह इस छोटी-सी घाटी में पा गया। यह आदर्श और यह सौंदर्य कल्पना की दुनिया का नहीं था—यह सत्य था और इसे सत्य बनाया जा सकता था। राजीव को यह भी पूरा भरोसा था कि यह स्वर्ग कभी सारी दुनिया पर छा जायगा और बदक़िस्मत इन्सान एक बार फिर सुखी हो सकेगा।

गाँव के लोगों ने उसे अपना-सा मान भी लिया था क्योंकि वह लोग सौंदर्य के पुजारी थे और सौंदर्य कलाकार की रग-रग में समाया होता है।

* * *

राजीव जब मधुगाँव में आया था तो उस रंगीन वादी में उसे वह सुहानी जन्नत मिली थी जिसकी तलाश वह न जाने कब से कर रहा था। भोले-भाले मुस्कराते हुए चेहरे थे और शांत, सुन्दर, सुघर मकान—न कोई दिखावा, न कोई कपट, न दौलत का वह ज़र्द रूप। बस एक सादगी थी जो मन को भा जाती थी। लेकिन इन सीधे-सादे मकानों में उसे एक अजीब-सा मकान दिखाई दिया जो औरों से ज़्यादा बड़ा था। उस मकान को शानदार तो नहीं कहा जा सकता था लेकिन कभी वह सुन्दर अवश्य रहा होगा—अब तो उसके बूढ़े चेहरे पर वक़्त के

और ग़म के काले धब्बे ही बच रहे थे। वह मकान उस औरत की तरह था जिसके चेहरे पर कभी हुस्न के गुलाब मुस्कराया करते थे, जिसकी आँखों में कभी उम्मेद की चमक थी, जिसके दिल में कभी हज़ारों उमंगें और अरमान मचला करते थे; लेकिन वह गुलाब न जाने कबके मुरझा चुके थे, आशा की वह ज्योति वक्त की तारीकियों में गुम हो गई थी और दिल में मचलते हुए अरमान उस घुटन में सहम कर मर गये थे। उस मकान को देखकर दिल में दर्द-सा उठता था—एक डर लगता था। उसके पथरीले माथे पर कभी हरी-भरी बेलों पर रंगीन फूल मुस्कराया करते थे लेकिन वह बेलें अब सूख चुकी थीं। मकान के चारों ओर देवदार—के घने दरख़्त थे जिन पर हरापन और ताज़गी नहीं थी बल्कि मौत की कालिख थी—उस मकान की बन्द खिड़कियों और दरवाज़ों में बरसों से ज़िन्दगी के दीप नहीं जले थे।

राजीव को कुछ अजीब सा लगा था उस मकान का वहाँ होना। वह उस मकान का राज़ जानना चाहता था लेकिन उसने कभी कोशिश नहीं की क्योंकि उसका जज़्बाती दिल यह सोचने से डरता था कि ऐसा करने से शायद किसी को ठेस लगे, किसी के मुरझाये हुए अरमान तड़प उठें। लेकिन जोगू ने राजीव को उस मकान और उस मकान के अतीत में बँधे हुए व्यक्तियों की दर्द भरी दास्तान सुनाई—

माँजो इस गाँव की सबसे हसीन—सबसे जवान औरत थी। उसका सौन्दर्य और उसके शरीर की उमंगे इतनी विशाल थीं कि वह इस घाटी में समा नहीं पाती थीं और उसके प्यार को एक ऐसे प्यार की ज़रूरत थी जिसमें तूफ़ान का सा तेवर हो, सैलाब का सा जोश और अल्हड़पन हो और इस वादी में रहने वाला कोई व्यक्ति माँजो के प्यार की इस माँग को पूरा न कर सका था। और तब एक दिन पहाड़ों के पार के देश का एक आदमी यहाँ आया था। उसका नाम शेरसिंह था। पहाड़ों के पार की दुनिया का हाल हम जानते नहीं बाबू—लेकिन वह दुनिया जो भी हो, जैसी भी हो, उसने शेरसिंह जैसे आदमी में

तूफ़ान खड़े कर दिये थे। शेरसिंह ने अपनी बात गाँव में किसी को नहीं बताई थी लेकिन गाँव वाले यह समझ गए थे कि शेरसिंह के दिल पर उस दुनिया ने कोई ऐसा भयानक ग़म डाला है—कोई ऐसा भारी सदमा पहुँचाया है कि जिससे उसके जज़्बात तिलमिला उठे हैं। व्यक्ति प्यार करना चाहे और दुनिया उस पर अंगारे बरसाए तो यह भी हो सकता है कि वह प्यार टूट जाय—जल जाय—ख़त्म हो जाय और यह भी हो सकता है कि वह प्यार असन्तोष का एक तूफ़ान बन जाय। शायद शेरसिंह के साथ वही हुआ था। इसलिए अपनी दुनिया से हार कर—घबरा कर—वह हमारी दुनिया में आया था और यहाँ जैसे माँजो उसका इन्तज़ार ही कर रही थी। शेरसिंह और माँजो के प्यार में मतवालापन था। उस प्यार में न सिर्फ़ दो आत्माओं का मधुर संगीत था बल्कि दो जवान शरीरों का सम्पूर्ण महामिलन भी। वैसा प्यार—बाबू—हमने भी कभी नहीं देखा। गाँववालों ने माँजो से कहा—"तेरा प्यार बहुत ख़तरनाक है। अगर शेरसिंह चला गया तो क्या होगा?" माँजो ने आसमान को छूनेवाली सामने की चोटी की तरफ़ देखकर कहा था: "उसके शरीर से और उससे मुझे ज़िन्दगी का सबसे बड़ा सुख मिला है जो मुझे और कहीं, और किसी से नहीं मिल सकता। पहले तो वह जायगा नहीं और गया भी तो वहाँ से कूद कर मैं जान दे दूँगी।" और शेरसिंह को जब इस बात का पता लगा तो उसने माँजो के गर्म जवान शरीर को अपनी बाहों में कसते हुए कहा—"तू मेरी ज़िन्दगी है—माँजो—और मुझे ज़िन्दगी से सिर्फ़ मौत अलग कर कर सकती है।" शेरसिंह ने अपने और माँजो के रहने के लिए यह मकान बनवाया। लोग कहते हैं कि यह बड़ा सुन्दर मकान था—मानो प्यार के देवता का मन्दिर हो। दिन-रात इस मकान से हँसी और क़हक़हों की आवाज़ आती थी। बाहर के मैदान में रंग-बिरंगे फूल लगे थे और देवदार के लम्बे पेड़ों की नरम और नाज़ुक डालें हवा में अँगड़ाइयाँ लिया करती थीं। लेकिन यह ख़ुशी ज़्यादा दिनों तक न रह

सकी। शेरसिंह बीमार हुआ और मर गया—माँजो को उस ग़म ने पागल बना दिया और एक दिन वह सामने वाली चोटी से कूद पड़ी। प्रेम के देवता का मन्दिर वीरान हो गया—यह फूल मुरझा गए—देवदार के वृक्षों ने जैसे कफ़न ओढ़ लिया और उनकी शाखें फिर कभी न झूमीं—सारा चमन उजड़ गया। और—बाबू—जैसा आप इसे अब देख रहे हैं—वैसा यह बन गया।

जोगू की आँखें तर हो गईं थीं। राजीव का दिल भी यह सोच कर सिहर उठा कि जहाँ कभी प्यार और जवानी मुस्कराया करते थे वहाँ अब तन्हाई की आत्मा गहरी तारीकियों में छटपटा रही होगी—उसकी आँखों में आँसू तो न आए पर प्यार और ग़म की इस दास्तान को सुन कर उसके दिल में दर्द के समन्दर उमड़ पड़े।

* * *

शमशेर जब मधुगाँव में आया था तो उसने अपने रहने के लिए शेरसिंह और माँजो का वह मकान ही चुना था। शमशेर को उस महान प्रेम की दास्तान तो नहीं मालूम थी पर वह बसे हुए घरों से ज़्यादा अब खँडहर में रहना पसन्द करता था। अपनी पिछली ज़िन्दगी में उसे बसे हुए घरों में भी वीराने मिले थे—उन घरों में उसे जगह नहीं मिल सकी थी—उन घरों के दरवाज़े उसके लिए बन्द थे। वह परिवार, जिनकी स्थापना अब से हज़ारों साल पहले प्रेम के आधार पर पड़ी थी, अब आज स्वार्थ की चहारदीवारी के पीछे क़ैद थे। हो सकता है कि विवाह का मतलब दो शरीर और आत्माओं का प्रेम के बन्धनों में बँध जाना हो पर विवाह का रूप बाद को भद्दा और कुरूप हो गया था। पति और पत्नी के माने हुए प्रेम सम्बन्ध से परिवार का जन्म हुआ—घर का जन्म हुआ और परिवार और घर ने व्यक्ति के प्रेम करने की विशाल भावना और आकांक्षा पर मज़बूत बन्धन लगा दिए। आदमी का प्रेम औरत में और औरत का प्यार आदमी में केन्द्रित होकर खो

गया और नारी और पुरुष का प्यार अपनी उत्पन्न हुई सन्तान तक सीमित हो गया। और वह परिवार जब और बढ़ा और बड़ा हुआ तो उसके भिन्न भागों ने समय आने पर अपने-अपने घिरौंदे बना लिए जिनकी रेतीली दीवारों के बाहर झाँककर अन्दर बसने वालों ने कभी सहानुभूति की एक भी दृष्टि बाहर पड़ोसी पर न डाली। जो कल सगे भाई थे उन्होंने आज अपने अलग परिवार खड़े कर लिए और आपस का प्रेम अपने-अपने परिवारों—बाल-बच्चों में सिमट कर एक दूसरे के लिए ख़त्म हो गया। "मैं" और "मेरा" ने स्वार्थ की चट्टानें खड़ी कर दीं, जिन्हें व्यक्ति पार नहीं कर पाया और इस प्रकार प्यार का जज़्बा और ताक़त, जिन्हें निःसीम होना चाहिए था, एक तंग दायरे में दब कर रह गए। स्वार्थ की इन सीमाओं के पीछे रह कर भी इन्सान भगवान को प्यार करना चाहता है। अगर भगवान कुछ है तो वह विश्व का ही नहीं है, पूरे ब्रह्मलोक की शक्तियों का केन्द्र-रूप है। अगर कोई व्यक्ति परिवार की सीमाओं में बँध कर ब्रह्म को प्यार करना चाहता है तो यह न केवल सर्वथा असम्भव है बल्कि झूठ है—धोखा है—जो व्यक्ति अपनी आत्मा को देता है। इसलिए शमशेर अपना जीवन उस खँडहर में बिताना चाहता था जहाँ उसकी तन्हाई ही सिर्फ़ उसका साथ दे। उन खँडहरों में अन्धेरा भी होगा लेकिन यह अँधेरा उस रौशनी से तो ज़्यादा ही अच्छा होगा जिसमें उसने दुनिया का कोढ़ देखा था। उस रौशनी ने शमशेर को अन्धा कर दिया था। और दुनिया ने उसकी रूह को जो तकलीफ़ पहुँचाई थी—उसके दिल को जो ठेस लगाई थी, उसका शमशेर बदला लेना चाहता था—उसके दिल में नफ़रत के जो अंगार धधक रहे थे वह उस सड़ी-गली दुनिया को जला कर राख कर डालना चाहते थे। शमशेर के दिल के अन्दर प्यार की जो इन्सानी भावना थी उसे दुनिया की—परिस्थितियों की अन्धी ताक़तों ने खुद्दल बना दिया था और नफ़रत की कटीली राहों पर मोड़ दिया था और नफ़रत इन्तक़ाम चाहती

थी। शमशेर का इन्तक़ाम लड़ाई के मैदान पर ज़ाहिर हुआ था लेकिन बदला लेने की ताक़त को भी सभ्यता की बनाई हुई मशीनों ने उससे छीन लिया था और अब वह नफ़रत तन्हाई में सिर्फ़ चीख़ना चाहती थी।

शमशेर इसलिए मधुगाँव में आकर उस खँडहर से मकान में बस गया। उस मकान की देखभाल गाँव की एक ग़रीब विधवा किया करती थी जिसके हवाले गाँववालों ने यह मकान कर दिया था। शमशेर के आने के पहले उस मकान में सिर्फ़ राधा और उसकी बेटी सोमा रहा करते थे। राधा बूढ़ी थी और सोमा जवान थी—जवान क्या थी वह वहाँ थी जहाँ बचपन और जवानी की हदें एक दूसरे को छूती हैं। जब आँखों में ज़िन्दगी की रौशनी आ जाती है, जब गालों पर जवान गुलाब फूट पड़ते हैं, जब खाल में गर्म ख़ून की चमक आ जाती है, जब शरीर की शराब हर रग में उमड़ पड़ती है, जब जिस्म के हर ज़र्रे में उभर पड़ने की हरकत पैदा हो जाती है लेकिन फिर भी जब इस सब का अहसास नहीं होता और वह बाग़ की खिली हुई अनजान कली की तरह नादान होती है। सोमा को अपने अन्दर उमड़ते हुए जवानी के हज़ारों चश्मों का पता तक न था। हालाँकि सोमा के शरीर की मांसल गोलाइयों में—आँखों में वह जादू था जो आदमी को प्यार में डूब जाने को मजबूर कर देता है लेकिन वह स्वयं मासूमियत की देवी थी।

जब शमशेर उस मकान में आया तब उसने केवल राधा को ही देखा—सोमा उस समय पहाड़ों पर अपनी भेड़-बकरियाँ चरा रही थी। उसका तो रोज़ का दस्तूर ही यह था कि सुबह ही खा-पीकर वह भेड़-बकरियों के झुण्ड को चराने ले जाती और सूरज ढलते घर लौटती। सारे दिन वह उन जवान दोपहरियों में देवदारों के साये में पड़ी-पड़ी अपनी मासूम आँखों से आसमान की गोद में खेलते हुए मेघ-पुत्रों को निहारा करती और कभी कभी उसके कुँवारे होठों से सौन्दर्य की रागिनी फूट पड़ती। उस तराने में मानो उस ख़ूबसूरत वादी का सारा रूप—

हवाओं की सिहरन—चट्टानों के पथरीले दिल से रिसते हुए झरने की मधुर कलकल—सब समाए हुए थे। सोमा का यह गीत वादी-वादी में गूँजता और चारों तरफ़ के पहाड़ों से टकरा कर सारे आकाश पर छा जाता था। इसलिए शमशेर ने केवल राधा को देखा था—उसे पता भी न था कि सोमा भी उसी मकान में रहती है। बस राधा ही शमशेर का काम कर दिया करती थी और शमशेर अपने कमरे से कहीं नहीं निकलता था।

३

राजीव को इस स्वर्ग में आए हुए काफ़ी दिन हो चुके थे। आने के साथ उसकी चेतना पर उस सौन्दर्य का इतना गहरा प्रभाव पड़ा था कि वह काफ़ी दिनों तक कोई चित्र नहीं बना सका था। ऐसा होना स्वाभाविक भी होता है। कभी-कभी सौन्दर्य इतना सुन्दर होता है—उसके रूप में इतनी जगमगाहट होती है कि आँखें उसे देख कर चकाचौंध हो जाती हैं—छवि का समन्दर व्यक्ति की चेतना पर फैल जाता है। सौन्दर्य कला से महान है—कला तो वह प्रतिक्रिया है जो सौन्दर्य को देख कर कलाकार की चेतना पर होती है। कलाकार के व्यक्तित्व में से छन कर सौन्दर्य कलाकार की आत्मा पर पड़ता है और अनुभव एहसास बनकर कला के साँचे में ढल जाता है। लेकिन कभी-कभी वह सौन्दर्य इतना महान होता है कि व्यक्ति और आत्मा दोनों उसके रंग में डूब जाते हैं और इतनी मदहोशी छा जाती है कि कला-कार की चेतना सुन्न पड़ जाती हैं। जब भावनाओं का सैलाब व्यक्ति पर टूट पड़ता है तब ज़बान नहीं खुलती—आदमी कहना चाहता है पर कह नहीं पाता। ठीक इसी तरह उस घाटी का अलौकिक सौन्दर्य था जिसने राजीव के व्यक्तित्व और उसकी आत्मा को रूप के समन्दर में बिल्कुल सराबोर कर दिया था। अनुभव की ज़्यादती कलाकार को भी गूँगा बना

देती है और वह तभी कुछ कह पाता है जब वह अनुभव ज़रा दूर हो जाय और कलाकार उसकी कमी महसूस करे। अभाव व्यक्ति में एक सूनापन—एकाकीपन पैदा कर देता है। रूप की तस्वीर जब आँखों के सामने रहे तब किसे यह चिन्ता है, कौन यह चाहता है कि गीत लिखे और चित्र बनाए; वह तो डूबा रहता है उस रूप में—उस पर जादू रहता है। लेकिन जब वह तस्वीर आँखों से—व्यक्ति से दूर हटती है—धुँधली होती है और बस ओझल होने को होती है तब वह जादू ख़त्म हो जाता है, तिलस्म टूट जाता है, नशा ग़ायब हो जाता है—सिर्फ़ ख़ुमार होता है—तन्हाई होती है—जिसमें व्यक्ति की आत्मा छटपटाती है—चीख़ती-चिल्लाती है—रो देती है और उसकी आवाज़ तमाम आसमानों में गूँज उठती है—"रूप की तस्वीर! एक बार फिर क़रीब आजा!" लेकिन पीछे हटती हवाओं में उस तस्वीर के दामन का सिर्फ़ आख़िरी छोर होता है और सहमे हुए हाथ इच्छा की तीव्रता में आगे बढ़ जाते हैं—दिल हूक पड़ता है और तब कला का जन्म होता है। दर्द की आवाज़—तन्हाई की पुकार नग़्मों में थिरक उठती है।

मधुगाँव में प्रकृति का जो दैवी रूप था उसने राजीव पर जादू कर दिया था—वह मतवाला हो गया था। सुबह का सूरज आसमान पर सिन्दूर फैला देता था—आसपास के पहाड़ों पर और हरी-भरी वादियों में सोना पिघला देता था—घास में से—पेड़, पत्तियों, फूलों में से ज़िन्दगी उभर पड़ती थी—ख़ामोशी में ज़िन्दगी का संगीत गुनगुना पड़ता था। सूरज ढल जाता था, आसमान के दामन में मचलते हुए बादलों में हज़ार रंग फूट पड़ते थे और पहाड़ों के पीछे से अँधियारा निकल पड़ता था—तब आकाश में सितारे उमड़ पड़ते थे—चाँद अपनी वंशी पर प्यार के तराने बजाता हुआ उदय होता था और सितारों में चुप बैठी हुई ज्योति की परियाँ नाच पड़ती थीं। और वादी में एक बड़ी आग के चारों तरफ़ मधुगाँव की जवानियाँ मुहब्बत के अमृत में मदमस्त होकर बाँसुरी पर और ढोल पर गीत जगा देती थीं—घुँघरू झँकार कर उठते

थे और जब वह रास ख़त्म हो जाता था तब रात के अन्तिम पहर तक गोल-गोल बाँहों में मर्द और औरत प्यार और ज़िन्दगी की कहानियाँ दोहराया करते थे। यह था उस वादी में बसने वालों का जीवन—या ख़्वाब ? कभी-कभी राजीव को भ्रम भी होता था लेकिन बस कुछ देर को; क्योंकि उसकी आत्मा जानती थी कि वास्तव में जीवन इतना ही सुन्दर है।

* * *

एक दिन राजीव पहाड़ों पर अकेला घूम रहा था। ख़ामोशी थी और उस ख़ामोशी में वह ज़िन्दगी की धड़कनों को महसूस कर रहा था और वह मतवाला-सा इधर-उधर घूम रहा था। कि इतने में एक गीत की लहराती हुई लय उसके कानों में पड़ी—क़दम ठिठक कर रुक गए। लगता था कि हर फूल और पत्ती को सहलाता हुआ वह गीत सारे वातावरण में फैला हुआ है और उस माहोल का ज़र्रा-ज़र्रा उस लय पर थिरक रहा है। जिस तरफ़ से गाने की आवाज़ आ रही थी उसी दिशा में राजीव के क़दम बरबस चल पड़े। अजनबी क़दमों की आहट सुनकर कुछ भेड़ें बोल पड़ीं और वह गीत धीमा होकर होठों पर रुक गया।

सोमा एक देवदार के साये में पत्थर का तकिया लगाए पड़ी थी। राजीव के पैर एकाएक रुक गए। सोमा उठ कर बैठ गई देवदार के सहारे। रूप की देवी राजीव के सामने बैठी थी—राजीव एक पल को ख़ामोश रह गया।

"तुमने गाना क्यों बन्द कर दिया ?" राजीव की आँखें सोमा की आँखों से मिल गईं और ख़ुदबख़ुद सोमा की पलकें झपक गईं।

"तुम कौन हो, अजनबी ?"

"एक परदेसी !"

हवा का झोंका आया—आँचल सिहर कर हट गया और बालों की एक लट आज़ाद होकर माथे पर आ गई। सोमा ने उस लट को सँवार

कर पीछे कर दिया, आँचल को ठीक किया और गाल सुर्ख़ हो गए। सोमा घबरा गई—जवानी ने बचपन का साथ छोड़ दिया। रूप तब तक बेख़बर रहता है जब तक पुजारी उसके सामने न आ जाय और जब ऐसा होता है तब पलकें मुँद जाती हैं और चेहरे पर लाज की लाली छा जाती है—देवी को अपने रूप का अहसास हो जाता है और वह स्वयं अपनी जवानी की मदिरा पीकर झूम उठती है और यौवन अंदर चीख़ पड़ता है—"मैं जवान हूँ।"

"तुम यहाँ क्यों आए, परदेसी?"

"तुम्हारा गीत........"

"मेरा गीत—मेरा गीत क्या?"

"तुम्हारा गीत मुझे खींच लाया....तुम्हारा नाम क्या है?"

"सोमा! तुम्हारा क्या नाम है परदेसी?"

"राजीव!"

राजीव पास बैठ गया। भेंड़े फिर मुँह झुका कर चरने लगीं, फिर ख़ामोशी छा गई और उस ख़ामोशी में राजीव और सोमा को अपने दिलों की धड़कनों का अहसास हुआ और उनके अन्दर न जाने कौन सी नयी भावना जाग पड़ी।

"मुझे तुम्हारा गीत बहुत अच्छा लगा—सोमा!"

"क्यों? मुझे ठीक-ठीक गाना भी तो नहीं आता!"

"नहीं! क्या तुम मुझे रोज़ गीत सुनाया करोगी!

"मेरा गीत सुन कर करोगे क्या?"

"कुछ नहीं—मुझे अच्छा लगता है!"

"सच—परदेसी?"

"सच!"

फिर वही ख़ामोशी! फिर एक बेचैनी!

"और वह अपना गीत पूरा नहीं करोगी—सोमा?"

"कौन सा?"

"वही जो तुम अभी गा रही थीं !"

सोमा ने राजीव की तरफ़ आँखें उठाकर देखा और घबरा कर पलक फिर मुँद गए—चेहरे पर सुर्ख़ी छा गई। जैसे दिल में हज़ारों तार झन-झना उठे हों।

"सोमा—गाओ !"

"नहीं—मुझे शरम आती है !"

भेड़ का एक बच्चा सोमा के पास आ गया। सोमा ने उसे अपनी गोद में बैठा लिया और उसे पुचकारने लगी। थोड़ी देर ख़ामोश बैठ कर भेड़ का बच्चा उठ कर भाग गया।

"सोमा !"

सोमा के कान में संगीत के समन्दर भर गए—उसे अपने अन्दर एक अजीब सी सिहरन का आभास हुआ और उसके कान और उसके आसपास के हिस्से में ख़ून की मौजें उमड़ पड़ीं, होंठ काँप गए।

"क्या है परदेसी ?"

"कुछ नहीं सोमा !"

सोमा एक दम जवान हो गयी। जब अपने रूप से औरत खुद मचल उठे—जब उसे यौवन का अहसास हो जाय तो वह जवान हो जाती है। सोमा बाएँ हाथ की उँगली पर अपना आँचल लपेट रही थी। दूर पर सारी भेड़ें और बकरियाँ बोल पड़ीं। सोमा उठ पड़ी।

"जा रही हो !"

"हाँ !"

"फिर कब मिलोगी—सोमा ?"

"कल !"

"मैं तुम्हारा इन्तज़ार करूँगा !"

सोमा ठिठकी और फिर अपनी भेड़ों को समेटती हुई पहाड़ों से नीचे उतरने लगी।

सोमा आज बदल चुकी थी। आज उसकी चाल में बच्चों का-सा

वह अल्हड़पन न था—आज सुबह तक वह घर भागती हुई जाती थी और उसके बाल और उसका आँचल मस्ती से हवा में लहराया करते थे। लेकिन इस वक्त हवा के झोंके उसके शरीर को सिहरा रहे थे—उनके दिल में गुदगुदी सी पैदा कर रहे थे, उड़ती हुई लटों को वह बार-बार सँवारती थी—लहराते हुए आँचल को वह बार-बार कसती थी। उस नादान को खुद यह पता न था कि वह ऐसा क्यों कर रही है लेकिन वह अपने शरीर को ढाँक रही थी इसलिए कि कहीं हवा उसे न छेड़े—आसमान उसके रूप को न देख पाए। और अपने आप उसका चेहरा रह-रह कर सुर्ख़ हो जाता था। परदेसी की सूरत उसकी आँखों में बार-बार उतर आती थी और वह एक अनजाने सुख से काँप जाती थी। "सोमा!" राजीव की आवाज़ उसके कानों में गूँज रही थी और वह उसे बड़ी मीठी लग रही थी—बड़ी मीठी। वह उस आवाज़ को एक बार—कई बार सुनना चाहती थी—वह बार-बार पलकें मूँद लेती थी शायद इसलिए कि अजनबी की सूरत उनमें टिक जाय और वह उसे देखती रहे पर वह तस्वीर उसके चारों तरफ़ किलोलें कर रही थी—उसे तंग कर रही थी और वह उन तमाम भागती हुई तस्वीरों को समेट कर दिल में क़ैद कर लेना चाहती थी। और रात को जब हर तरफ़ सन्नाटा छा गया और दुनिया नींद की पलकों में खो गई तब भी वह तस्वीर सोमा से आँख-मिचौली खेलती रही और वह आवाज़ उसके कानों में गूँजती रही। अपनी खिड़की में से, लेटी-लेटी, वह चाँद-सितारों का खेल देखती रही लेकिन उन दौड़ते-भागते चाँद-तारों के बीच में भी उसे राजीव की सूरत नाचती हुई दिखाई दी और रात की ख़ामोशी पर से तैरती हुई राजीव की आवाज़ आई और उसके कानों में अमृत की हज़ारों लहरों की तरह उमड़ पड़ी। उस रात सोमा पल भर को भी न सो पाई। सुबह उसकी आँखों में सुर्ख़ी देख कर माँ ने पूँछा—"रात सोई नहीं?" "नहीं—नींद नहीं आई!" और चेहरे पर लाज के लाखों सुर्ख़ गुलाब एकदम मचल पड़े। दूसरे दिन फिर राजीव और सोमा

उसी जगह मिले और उसके बाद रोज़। सुनहरे आसमान के नीचे देव-दारों के ठंडे साए में उनका वह प्यार पला, बढ़ा और जवान हुआ और उनके गीत और उनके क़हक़हों से वह सारा माहोल गूँजने लगा।

*   *   *

राजीव को जैसे उस प्यार ने एक नया जीवन दान दिया। मधु-गाँव की हरी-भरी वादी में उसने क़ुदरत का जो सुहाना रूप देखा था उससे उसे यह विश्वास हो गया था कि जिस दुनिया में वह पहले था वह एक झूठी दुनिया थी जिसे आदमी ने अपनी नादानियों से, अपने कठोर क़ायदे-क़ानूनों से, झूठ और फ़रेब से, स्वार्थ और जलन से नरक बना दिया था। जहाँ वह आया था वहाँ भी तो इन्सान बसते थे लेकिन वह जगह तो स्वर्ग थी। वहाँ की हवाएँ आज़ाद थीं, वहाँ के दिन जवान और चमकीले थे और रातें अमृत में भीगी हुई, वहाँ ज़िन्दगी ज़िन्दा थी, प्यार पर रूढ़ियों की नापाक पाबन्दियाँ नहीं थीं, वहाँ अन्याय के दम घोटनेवाले माहोल में अरमान और उमंगें छटपटाया नहीं करते थे बल्कि आज़ाद हो कर मुस्कराया करते थे। इस स्वर्ग को देख कर राजीव को बहुत दुख हुआ उस दुनिया के लिए जो कि खुश और आज़ाद हो सकती थी मगर खुश और आज़ाद थी नहीं। और प्रकृति के उस अलौकिक सौंदर्य में राजीव बिल्कुल डूब गया—उसका दिल, आत्मा, शरीर अमृत के समन्दरों की तह में थे—उसकी चेतना का हर ज़र्रा उस शराब की मस्ती में सराबोर था और वह सारा रूप राजीव के इतने क़रीब था कि उसकी तूलिका उठ न पाई रंगीन उषा या मतवाली साँझ के चित्र खींचने के लिए—मस्ती की उस हालत में कला बिल्कुल अनावश्यक थी। जब तक सुरूर क़ायम रहता है और शराब की रंगीन लहरें दिल और दिमाग़ पर खेलती रहती हैं तब तक किसे ज़रूरत महसूस होती है कि गीत गाए या चित्र खींचें; वह तो जब नशा उतरने लगता है और खुमार के कड़ुवापन का होश आने लगता है तब दिल,

दिमाग और चेतना सब एक साथ चीख़ उठते हैं—तब यह अहसास होता है कि ऐसा कुछ था जो अब नहीं है और उस 'कुछ' को पा लेने की इच्छा, उस कमी का आभास कला का रूप ले लेती है।

राजीव के लिए अगर वह वादी स्वर्ग थी तो सोमा उस वादी की देवी। सोमा के रूप में राजीव को कुदरत के सौन्दर्य का निचोड़ दिखाई देता था। उसके बालों में आसमान की गोद में मचलते हुए बादलों का सा अल्हड़पन था, वही लचीलापन था—वही आवारगी; उसकी आँखों में नवोदित सूर्य का उन्माद था, सितारों की जगमगाहट थी और चाँदनी की सी शीतलता थी; उसके गालों में किसी अलौकिक कमल के फूल की सी सफ़ेदी और मुलायमियत थी; उसके होठों में जैसे असंख्य गुलाबों का रस था; उसका जवान वक्ष दूध की चट्टानों की तरह नर्म भी था और सख़्त भी—उनमें दो नन्हें नन्हें बालकों का सा उठान और नटखटपन था; उसकी कमर में वह लोच था जो देवदार के नाज़ुक दरख़्तों में होता है जब वह हवा के हल्के से झोंके में सिहर जाते हैं—उसके सारे शरीर में वह शक्ति उमड़ती हुई दिखाई देती थी जो जवान धरती में होती है—धरती जो प्रकृति की वासना को अपने अन्दर समेट लेती है और अपनी कोख से बार बार—हमेशा जन्म देती रहती है। सोमा रूप के चरम आदर्श की प्रतिमा थी। सोमा के रूप से पहले तो राजीव स्तम्भित हो गया—नशा अपनी हद तक पहुँच गया था। प्यार में इतना मतवाला-पन होता है यह राजीव को सोमा से प्रेम करने के पहले मालूम ही न था। सोमा जब उसके सामने—उसके पास होती थी तब दिल में अर-मानों के हज़ार फूल मुस्कुरा पड़ते थे—हज़ारों बहारें झूम उठती थीं—करोड़ों कुमकुमे खिलखिला पड़ते थे—हवा की रग-रग में बेशुमार नग़मे गुनगुना पड़ते थे—सब कुछ रूप के अमृत में नहाया हुआ मालूम पड़ता था। और जब वह उससे दूर होती थी तब भी सोमा के व्यक्तित्व की कशिश उसके चारों तरफ़ किसी ख़ूबसूरत से गीत की गूँज की तरह मँड-राया करती थी। फिर भी जब सोमा सामने से चली जाती थी तो कम

से कम उसका मांसल व्यक्तित्व तो दृष्टि से ओझल हो ही जाता था। फूल की ख़ुशबू तो कुछ दूर तक भी महसूस होती है लेकिन उसका वह हुस्न—वह दिलकश रूप—वह रंग—वह नर्मी—वह छब—यह सब तो सिर्फ़ जभी दिखाई पड़ते हैं जब फूल आँखों के सामने हो। इन्सान की इच्छाएँ केवल ख़ुशबू से सन्तुष्ट नहीं हो जातीं—वह फूल का रूप भी देखना चाहती हैं, बल्कि ख़ुशबू तो फूल के पास पहुँचने की उत्कंठा को और भी तीव्र कर देती है। और इसी तरह जब राजीव की आँखों के सामने सोमा नहीं होती थी तब उन दोनों के बीच प्यार की अगनित मौजें अँगड़ाइयाँ भले ही क्यों न लेती हों—उनकी कल्पना में एक दूसरे की सजीली प्रतिमाएँ क्यों न झूमती हों पर उनके शरीर को—उनके ख़ून को—उनके जिस्म की गर्मी को एक दूसरे की कमी ज़रूर खटकती थी। अपने चारों तरफ़ के रंगीन, जादू भरे वातावरण में राजीव के दिल को सोमा के दिल की धड़कनों की कमी महसूस होती थी—उसके शरीर को सोमा के नर्म और जवान शरीर का न होना खलता था और ऐसे ही सोमा को राजीव का पास न होना बुरा लगता था। इस अहसास में में पशु की वासना नहीं थी—ऐसा होना तो बिल्कुल स्वाभाविक था। और इस आभास ने राजीव के अन्दर उस चेतना को जगा दिया जो कला को जन्म देती है—उसने राजीव के दिल और आत्मा में एक उथल-पुथल पैदा कर दी। सोमा का पास न होना कुछ ऐसा था कि जैसे वह सब रूप–ज़िन्दगी उससे दूर हो गई हैं और जैसे वह उस स्वर्ग का एक भाग नहीं है बल्कि उससे हट कर खड़ा है। अब वह जब चाँद देखता था तो वह चाँदनी के समन्दर में डूब नहीं जाता था बल्कि उसे यह लगता था कि चाँद उससे दूर है—बहुत दूर; सुनहरी धूप में मग्न होकर उसका दिल नाच नहीं उठता था—उसे यह लगता था कि साँझ आएगी और वह रेशमी किरनें अँधेरे के दामन में सिमट कर ग़ायब हो जाएँगी; ज़िन्दगी उसे सुख तो देती थी पर वह आने वाली मृत्यु के बारे में भी सोचता था; नशे में उसे ख़ुमार का डर सताता था। सोमा जब उसके

पास भी होती थी तब भी उस सुख के साथ-साथ उसके अन्दर यह चेतना रहती थी कि थोड़ी देर बाद ही उसकी वह मोहनी सूरत दृष्टि की सीमाओं के बाहर होकर ओझल हो जायगी और उसकी आँखें दिशाओं के वीरानों में तलाश में भटकती रहेंगी। सोमा जाएगी तो जैसे बहार ही चली जाएगी और खिज़ाँ छा जाएगी हर तरफ़ और राजीव की आँखें नंगी शाखों पर फिर से फूल खिलने का इन्तज़ार देखती रहेंगी। और इस सब ने राजीव के अन्दर अकेलेपन की एक अजीब सी भावना पैदा कर दी थी; वास्तव में इसी एक भावना से ही ज़िन्दगी के सारे पहलू उभरते हैं। इसी भावना ने राजीव के प्यार को और ज़्यादा तेज़ कर दिया था; वह सुख के हर पल को आखिरी पल समझ कर उसी में ज़्यादा से ज़्यादा आनन्द उठाना चाहता था।

राजीव का 'ब्रुश' फिर से उठा और वह चित्र पर चित्र बनाता गया। उसने पहाड़ों के माथे पर खेलती हुई सूरज की किरनों के चित्र बनाए, धूप से भरी हुई घाटियों के चित्र बनाए, आसमान में घुमड़ते हुए बादलों के, ऊँचाई से गिरते हुए झरनों के, जंगली फूलों के और हवा में लहराते हुए देवदार के पेड़ों के चित्र बनाए। इन चित्रों में इतनी ज़िन्दगी थी, इतना सत्य था कि जितना इसके पहले के चित्रों में भी नहीं था, राजीव ने जैसे प्रकृति का हर राज़ समझा था—हर अदा को देख कर अपने चित्रों में उतारा था। लेकिन फिर भी एक असन्तोष था—एक बेचैनी थी; उसकी कला आदर्श की मज़िल तक पहुँचने के के लिए अब भी राह में भटक रही थी। और एक दम से बिजली की तरह उसके दिमाग़ में ख़्याल आया—"सोमा कला की आत्मा है—मैं सोमा का चित्र बनाऊँगा।"

४

शमशेर अपने कमरे के बाहर नहीं निकलता था। जिस दिन से उसने इस घर में क़दम रखा था तब से फिर वह बाहर न आया था।

बस वह अपने ऊपर वाले कमरे में रहता था और उस कमरे की खिड़कियों पर भी उसने पर्दे डलवा दिए थे—दिन में भी इतना अँधेरा रहता था कि वहाँ लैम्प जलता रहता था। न ही उस कमरे में कभी कोई आता था। राधा शमशेर की ज़रूरत की चीज़ें वहाँ पहुँचा देती थी और बस ! सूरज की एक भी किरण उस कमरे की गहरी तारीकी में पहुँच न पाती थी। पर्दों के उस पार की दुनिया में कब सूरज निकलता है कब चाँद-तारे निकलते हैं यह शमशेर न जानता था और न वह यह जानता था कि बाहर की दुनिया में कितना सौन्दर्य है—कितनी ज़िन्दगी है। वह न जानना चाहता था, न जानने की ज़रूरत महसूस करता था। बहुत दुनिया देखी थी उसने और उसकी देखी हुई दुनिया ने उसे जला कर राख कर डाला था; अब तमन्ना न थी उसके दिल में दुनिया या उसका रूप देखने की। इतनी चोटें खाई थीं उसने कि अब वह अपने ही अन्दर सिमट आना चाहता था—दुनिया की आँखों से दूर ताकि अब उस पर कोई नया ज़ुल्म न हो—कोई नयी चोट न मारी जाय। वह अपने एकाकीपन में किसी को घुसने नहीं देना चाहता था और उस अकेलेपन में उसकी ज़िन्दगी के न जाने कितने घाव उभर आते थे; उस अकेलेपन में कभी आँखों में सूखे हुए आँसू आ जाते थे, कभी उसकी मुट्ठियाँ क्रोध में भिन्च जाती थीं। नफ़रत की आग उसके दिल में उतनी ही तेज़ी से जल रही थी और क्योंकि वह दुनिया से इतना बदला न ले सका था जितना वह चाहता था इसलिए बदले की भावना अधूरी रह गई थी और जब उसे कोई निकास नहीं मिल पाता है तब वह अन्दर ही अन्दर सड़ने लगती है और एक भयानक रूप धारण कर लेती है। मधुगाँव के सुहाने स्वर्ग के बीच में शमशेर क्रोध और नफ़रत के ज्वालामुखी की तरह था। उस स्वर्ग का सौन्दर्य किसी भी आदमी को फिर से एक नया जीवन दे सकता था, फिर से इन्सानियत और प्यार की मान्यताओं में विश्वास दिला सकता था पर शमशेर के व्यक्तित्व के ऊपर नफ़रत की पर्तें काफ़ी मोटी जम चुकी थीं

और उसकी आँखों के सामने रेत के इतने ज़बरदस्त तूफ़ान थे कि उनके पार वह ज़िन्दगी के उस मुस्कराते हुए रूप को देख ही नहीं सकता था। उसके बन्द दरवाज़ों और ढँकी हुई खिड़कियों के बाहर की दुनिया जैसे उसके लिए थी ही नहीं; उसके लिए तो कमरे के अन्दर की दुनिया वास्तविकता थी और इस वास्तविकता में कुरूपता थी, दुनिया का कोढ़ था, उसकी एक ख़राब आँख थी, कटा हुआ पैर था, और नफ़रत से भरा हुआ दिल।

और अपनी इस दुनिया की तन्हाई में बैठा हुआ वह यह सोचा करता था कि जिस दुनिया को वह जानता था उसका अन्त कैसे होगा ? —कितनी देर में होगा ? वह दुनिया ख़त्म हो जायगी तो उसके बाद क्या होगा; इससे शमशेर को कोई वास्ता नहीं था ! नाश में उसका विश्वास था—निर्माण के बारे में वह सोचता भी नहीं था। उसका वैर पूरी मानवता से था; वह न केवल हर व्यक्ति से घृणा करता था—वह पूरी इंसानियत से नफ़रत करता था और वह चाहता था कि कोई ऐसी भयानक दुर्घटना आए जिसमें इन्सान की पूरी कौम ख़त्म हो जाय। उसको विश्वास था कि जिस युद्ध में वह लड़ा था वही नाश कर देगा उस घृणित समाज का पर, ऐसा नहीं हुआ। वह युद्ध तो सीले हुए बम के गोले की तरह था जो ज़रा सी आवाज़ करके—थोड़े से लोगों को घायल करके शान्त हो गया था और फिर से सुलह हो गयी थी। उसका यह विश्वास कितना ग़लत था यह उसे बाद को मालूम हुआ था ! शक्ति के ठेकेदारों ने इन्सानियत के मुर्दे को आपस में बाँट कर सन्तोष कर लिया था कुछ समय के लिए। अविश्वास, शंका, घृणा उनमें तब भी थीं शायद जब उन्होंने सन्धि-पत्रों पर हस्ताक्षर किए थे और इस समय भी शायद वह दूसरे युद्ध की तैयारियाँ कर रहे होंगे पर कुछ वक़्त के लिए उनके हथियार खुट्टल हो गए थे—उनकी हिम्मत पस्त हो गयी थी। कुछ समय के बाद फिर ज्वालामुखी का विस्फोट होगा और इन्सानियत की लाश के साथ बलात्कार होगा। लेकिन शमशेर सोच

रहा था कि एक ऐसा आख़िरी भूचाल क्यों नहीं आता जिसके नीचे दब कर सारी इन्सानियत चकना चूर हो जाय। जला हुआ समाज बार-बार राख में से उभर आता है, नए आदर्शों को लेकर नहीं वरन् अपने उन्हीं दोषों के साथ। ऐसा क्यों नहीं होता कि प्रलय हो जाय और संसार ख़त्म हो जाय और उसके बाद इन्सान पैदा ही न हो और या अगर पैदा हो तो प्यार और ज़िन्दगी से भरपूर—वह मुहब्बत का, न्याय का हमदर्दी का पुजारी हो; नफ़रत का देवता नहीं। लेकिन दूसरी बात में विश्वास होना शमशेर के लिए लगभग असम्भव था, इसलिए वह अपने एकाकीपन में प्रलय का ही आवाहन किया करता था।

* * *

गर्मी का मौसम खत्म हो गया था। सर्दी के शुरू होते ही राधा की तबियत ख़राब हो जाती थी और उससे ज्यादा उठा बैठा न जाता था। पहले तो ऐसी हालत में उसे चलने फिरने की आवश्यकता ही नहीं होती थी पर इधर शमशेर के आ जाने से उस पर काम आ पड़ा था। शमशेर का सारा काम तो वही किया करती थी। तबियत ठीक न रहने पर भी कुछ दिन वह अपना काम करती रही लेकिन फिर शरीर ने साथ न दिया और उसे सोमा से ही कहना पड़ा कि वह शमशेर का खाना वग़ैरह उसके कमरे में ऊपर पहुँचा आया करे।

सोमा ने सुना तो था कि शमशेर उस मकान में रहता है पर उसे यह कुछ न मालूम था कि वह कैसा आदमी है। उस मासूम कली को अपने खिलवाड़, अपनी मुस्कराहटों से फ़ुर्सत कहाँ थी कि वह उस अजनबी के बारे में कभी सोचे। अगर कभी ख़्याल आया भी होगा तो उसने टाल दिया होगा। पर आज वह सुबह ही शमशेर का नाश्ता लेकर उसके कमरे में गई।

सुबह हो चुकी थी फिर भी उस कमरे में रात मालूम पड़ रही थी क्योंकि पर्दे सब गिरे हुए थे और मेज़ पर लैम्प जलरहा था। कमरे का वातावरण कुछ ऐसा था कि जिससे सोमा सहम गई।

उसने चुपचाप नाश्ता रख दिया और कमरे के बाहर दबे पाँव आ गई। और उसके-आने जाने का शमशेर को क़तई पता न लगा। दोपहर को जब उसी पहाड़ पर, जहाँ राजीव और सोमा पहली बार मिले थे, वह दोनों फिर मिले तो सोमा ने राजीव को उस अजीब आदमी के बारे में बताया जिसके कमरे के पर्दे गिरे हुए थे और जहाँ सुबह भी लैम्प जल रहा था। राजीव ने कुछ और लोगों से भी पहले सुना था कि शेरसिंह और माँजो के मकान में कोई ऐसा आदमी आया है जो हमेशा अपने कमरे में ही रहता है—न कभी ख़ुद निकलता है, न किसी से मिलता है। और यह ख़बर भी उसे उड़ते हुए मिली थी कि उसकी एक आँख और एक पैर बेकार हैं, कि वह एक फ़ौजी अफ़सर है और राजीव को न जाने कैसे इस बात का स्वभावतः ज्ञान हो गया कि अवश्य वह कोई ऐसा व्यक्ति है कि जिसने बहुत ग़म उठाए हैं—जिसके बहुत चोटे लगी हैं—जिसे उस झूठे और अन्यायपूर्ण समाज ने बहुत सताया है। दुख तो राजीव ने भी उठाए थे, दिल पर उसके भी चोट लगी थी और फिर वह एक कलाकार था और कलाकार में दूसरे के दर्द को समझने की शक्ति होती है। राजीव के हृदय में शमशेर के लिए अपार हमदर्दी उमड़ आई।

सोमा बोली : "वह अजनबी बड़ा डरावना लगता है राजीव !"

"नहीं—सोमा—कोई आदमी डरावना नहीं होता। वह कोई दुनिया का सताया हुआ मालूम पड़ता है।"

"दुनिया कहाँ सताती है—राजीव !"

"हाँ सोमा ! दुनिया सताती है !"

"तो वह दुनिया बहुत ख़राब होगी !"

"हाँ सोमा, वह दुनिया बहुत ख़राब है।"

"कहाँ है वह दुनिया—राजीव ?'

"पहाड़ों के उस पार !"

"मुझे कभी ले तो नहीं जाओगे वहाँ !"

"नहीं !"

और सोमा राजीव की गोद में सर रख कर लेट गई और उसने आँखें मूँद लीं—सुख और सन्तोष से। राजीव का ध्यान फिर शमशेर की तरफ़ गया और वह सोचने लगा कि वह एक दिन शमशेर से मिलेगा।

* * *

रोज़ की तरह सोमा शमशेर के कमरे में उसका खाना लेकर गई। रोज़ की तरह शमशेर ख़ामोश बैठा था और उसका ध्यान सोमा के आने की तरफ़ था ही नहीं। कमरे की चौखट और मेज़ के बीच में न जाने क्या चीज पड़ी थी; सोमा उसमें उलझ कर एक दम गिर पड़ी और थाली, एक ज़ोरदार झनझनाहट से दूर जाकर गिरी। कमरे की गम्भीर निस्तब्धता पर एक ज़ोर का आघात हुआ। चौंक कर शमशेर पीछे की तरफ़ घूमा—घबराकर सोमा ने ऊपर को देखा और शमशेर और सोमा की आँखें पल भर को मिलीं। सोमा बुरी तरह घबराई हुई थी—उसकी आँखों में वह घबराहट थी जो बच्चे की आँखों में होती है जब वह कोई ग़लत काम कर के सहम जाता है—वह जल्दी से उठकर कमरे के बाहर भाग गई।

पर शमशेर की आँखों में उन दो सहमी हुई आँखों का चित्र नाचता रहा। वैसी आँखें शमशेर ने तमाम जीवन भर नहीं देखी थीं। शमशेर के विश्वास की मीनारें हिल गईं, उस संसार में एक ज़लज़ला आ गया जिसे शमशेर ने नफ़रत की बुनियादों पर रचा था। शमशेर तो यह सोच कर शान्त हो चुका था कि ज़िन्दगी एक वीरान पतझड़ है, कि बहार का आना नामुमकिन है, कि फूलों की मुस्कराहट और उनका रूप एक फ़रेब है—एक भ्रम है जिस पर विश्वास कर लेना अपने आप से एक बहुत बड़ा धोखा होगा। लेकिन उन दो आँखों के अबोध सन्देश ने जैसे जीवन भर के जुटाए हुए सारे विश्वासों को एक साथ

ख़त्म कर दिया। वह आँखें—उन आँखों की गहराइयों में जैसे प्यार के, रूप के, सत्य के, सहृदयता के दो विशाल संसार थे—उन आँखों में जैसे सूरज की पहली किरणों का लजीलापन सिमटा हुआ था, जवान सूरज की रसमसाती हुई ज़िन्दगी थी, हवा का निःसीम मतवालापन था, उस ख़ूबसूरत वादी में खिले हुए करोड़ों फूलों की अबोध मुस्कराहट थी। उन आँखों में जैसे ज़िन्दगी की एक नई पुकार थी—जीने के लिए, हँसने के लिए, प्यार करने के लिए एक नया निमंत्रण था।

और शमशेर के दिल में वह सब था जो उन आँखों में नहीं था—उसके दिल में क्रोध की आग थी, नफ़रत का ज़हर था, अँधेरे की कालिख और मौत की ख़ामोशी थी। और जब सोमा की आँखों में शमशेर ने झाँका था तब जैसे ज़िन्दगी और मौत में टक्कर हो गई। ज़िन्दगी के पास सौन्दर्य और प्यार के आकर्षण के अलावा कोई दूसरा अस्त्र नहीं था और मौत के पास लहकते हुए अंगार थे, पके हुए ज़ख्म थे और प्रतिकार की वासना थी। शमशेर के दिल के अन्दर यह द्वन्द देर तक चलता रहा—मौत ने ज़िन्दगी के आगे एक दम हथियार नहीं डाल दिए। रूप के अमृत की बड़ी-बड़ी लहरें उस पर बढ़ती चली आ रहीं थी—क्या वह अपने तमाम ज़ख्मों को, दर्द को, अपमानों को डूब जाने दे रूप के उस सैलाब में? क्या वह माफ़ कर दे उस समाज को जिसने उसे दुत्कारा था—पामाल किया था? यह एक बहुत बड़ा बलिदान था लेकिन ज़िन्दगी के सौन्दर्य ने नफ़रत के अंगारों पर, उसके आकर्षण ने ज़ख्मों पर और दर्द पर और प्यार ने प्रतिकार पर विजय प्राप्त कर ली? सोमा की उन आँखों ने शमशेर के अन्दर एक नया अंकुर जगा दिया : क्या जीवन सुखी और सुन्दर हो सकता है? ज़िन्दगी की मौत के ऊपर यह बहुत बड़ी जीत थी—अंगारों में इस फूल का खिल उठना एक महान आश्चर्य था।

सोमा को इसका पता न था कि उसकी एक निगाह ने शमशेर का क्या कुछ कर डाला है लेकिन जब वह अपने दामन में करोड़ों सुबहों

की मासूम किरने लेकर आई थी तो उन किरनों ने शमशेर के चारों तरफ़ खड़ी हुई अँधेरे की अगनित दीवालों को धीरे-धीरे बिल्कुल ढहा दिया था और शमशेर के शरीर और आत्मा का ज़र्रा-ज़र्रा इन्तज़ार में था कि वह नयी भावना उसको बिल्कुल डुबा दे।

शमशेर के जीवन के एकाकीपन में उजाले ने अँधेरे की जगह ले ली थी और उस उजाले में कल्पना का नवजात शिशु अकेले पल—बढ़ रहा था। इधर ख़ूबसूरत दोपहरियों में शमशेर की नयी जागी हुई आशा सपनों की सुहानी दुनिया में खेला करती थी; उधर धूप में नहाए पहाड़ों पर और धूप से भरी वादियों में सोमा और राजीव के प्यार के गीत गूँजा करते थे। उन गीतों की गूँज ज़मीन-आसमान, हर तरफ़ तो फैल जाती थी पर एक टूटे हुए इन्सान के नए जागे हुए सपनों में नहीं घुस पाई थी। शायद शमशेर की तन्हाई का वह अन्धेरा उस नए जागे हुए उजाले से कम क्रूर था क्योंकि अन्धेरा इन्सान में उम्मीदें नहीं जगाता—सपने देखने को नहीं कहता; वह उसे एक सन्तोष प्रदान करता है चाहे वह मृत्यु का ही सन्तोष क्यों न हो! लेकिन रौशनी तो आशाओं को जन्म देती है—सपनों के सुहाने संसार में रंगीन किरनें भर देती है—एक हसीन जादू पैदा कर देती है—एक भ्रम; लेकिन आशाएँ टूट जाती हैं—सपनों का संसार ग़ायब हो जाता है और जादू और भ्रम साथ नहीं देते। लेकिन रौशनी एक ऐसा जादू है जो बहुत आसानी से बहला सकता है—चलने वालों को गुमराह कर सकता है; उम्मेद हसीन से हसीन औरत से ज़्यादा आकर्षक है और उस औरत से ज़्यादा विश्वासघात करने में भी निपुण। शमशेर अपने तारीक रास्तों पर सन्तुष्ट खड़ा था कि कहीं दूर पर एक लौ चमक उठी और शमशेर दीवाना होकर उसी तरफ़ भाग पड़ा। लौ पीछे हटती गई—दूर होती गई और शमशेर के आगे वह अन्धकारपूर्ण वीराना और ज़्यादा विशाल होता गया।

* * *

अपने निश्चय के अनुसार राजीव शमशेर से मिला था। उनके परिचय के आगे बढ़ने का केवल एक ही कारण था। जो परिवर्त्तन शमशेर के अन्दर आया था उसके कारण वह राजीव से दूर न हटा था और आश्चर्यजनक बात यह थी कि उसने राजीव को शंका और घृणा की दृष्टि से भी नहीं देखा था और इस पर राजीव का व्यक्तित्व भी इतना सरल और आकर्षक था कि देर न लगी शमशेर और राजीव में मैत्री होने में। दोनों ने जीवन देखा था—जिन संघर्षों से हो कर वह दोनों गुज़रे थे उन्होंने शमशेर के अन्दर नफ़रत और राजीव में एक भावपूर्ण सहानुभूति पैदा कर दी थी। राजीव को समझते देर न लगी कि शमशेर को बहुत चोटें मारी हैं समाज ने और उन ज़ख्मों ने और अनुभवों ने उसके दिल को कड़ुवा बना दिया है। उसके दिल में शमशेर के लिए एक महान सहानुभूति पैदा हो गई थी—भाई का सा स्नेह और आदर। और राजीव को इस बात का भी ज्ञान था कि शमशेर के अन्दर कोई परिवर्त्तन हो रहा है लेकिन उस परिवर्त्तन का मूल कारण क्या है, यह राजीव को नहीं मालूम था। उसके दिल में फिर भी यह कामना थी कि शमशेर एक बार दोबारा ज़िन्दगी के दायरे में वापस आ जाय, सुखी हो जाय। और जब-जब उसको समय होता वह शमशेर के पास आ जाता। राजीव शमशेर को 'दादा' कहने लगा था। एक दिन राजीव शमशेर से पूछ बैठा :

"दादा! उन परम्पराओं में आपका विश्वास है जो समाज के ढाँचे को बाँधे हुए हैं?"

प्रश्न जैसे तीर सा दिल पर लगा हो। परम्पराएँ—समाज—प्यार और सौन्दर्य के नए सपनों के नीचे से नफ़रत और क्रोध के शोले फिर से भड़क उठे और शमशेर की आँखें चमकने लगीं। ज़हर का कोई सोता फिर से फूट पड़ा और हालाँकि शमशेर के दिल में कल्पना ने आशाओं के नए फूल खिलाए थे फिर भी कड़ुवाहट फैल गई शमशेर के दिल में।

"नहीं !" शमशेर ने कड़ी आवाज़ में उत्तर दिया; फिर जैसे बाँध सम्हाल न सका उमड़ते हुए सैलाब को—"मुझे उन परम्पराओं से—समाज से सख्त नफ़रत है, चिढ़ है।"

राजीव को कुछ आश्चर्य हुआ—शमशेर के मत पर नहीं, उसकी आवाज़ में जो क्रोध था उस पर।

"तो आप समाज के किस रूप में विश्वास करते हैं ?"

"किसी रूप में नहीं—मैं केवल उसका नाश चाहता हूँ !"

"और उसके बाद ?"

"उसके बाद क्या ?"

"उसके बाद समाज का—दुनिया का क्या रूप हो ?"

"कोई नहीं—मैं सम्पूर्ण नाश चाहता हूँ कि इतनी धूल भी न बचे जिस पर दूसरी मीनार खड़ी हो सके।

"लेकिन मीनार का खड़ा होना तो अनिवार्य है—नाश के बाद निर्माण प्रकृति का नियम है और कम से कम उस नियम....

"निर्माण होता कब है—वही दोष तो हैं जो हर बार नया रूप लेकर उभर आते हैं !"

"वह तो इसलिए कि निर्माण की बुनियाद ही ग़लत पड़ती है।

"तो तुम अपने नए समाज की नींव किन बुनियादों पर रखना चाहते हो ?" शमशेर की आवाज़ में कटु उपहास था।

"आशाओं पर।"

"वह तो एक भ्रम है।"

"आदर्शों पर।"

"आदर्शों को निबाहने की हिम्मत आदमी में नहीं होती। वह दूर की बातें हैं !"

"प्यार पर !"

"प्यार पर...." शमशेर कहते-कहते रुक गया और उसके सामने सोमा की आँखों की तस्वीर नाच उठी। राजीव ने भी महसूस किया

कि उसने शमशेर के कड़े दिल के अन्दर किसी बारीक तार को छू दिया है।

५

सोमा के प्यार ने राजीव के अन्दर जो नई चेतना जगाई थी—ज़िन्दगी के सुखों के पास होते हुए भी उनसे दूरी महसूस करने का जो आभास पैदा किया था—उसके प्रभाव में राजीव ने फिर से अपनी तूलिका को सम्हाला था और बहुत सजीव चित्र बनाए थे उसने लेकिन उसको सन्तोष न मिला था। उसे हमेशा यह लगता था कि जैसे सौन्दर्य की आत्मा को वह पकड़ नहीं पाया है—रूप और सत्य की तह तक वह पहुँच नहीं सका। राजीव सोमा में उस तमाम सौन्दर्य की आत्मा को देखता था—वास्तव में सोमा के शरीर में समा कर सौन्दर्य ने एक सजीव रूप धारण कर लिया था। सूरज के सुनहरेपन ने, हवा के मतवालेपन ने, बादलों के अल्हड़पन ने, आसमान की नीली गहराइयों ने, चाँद की गोरी शीतलता ने, बादलों के अन्तर में कौंधने वाली बिजली ने और झरने के प्रशान्त संगीत ने जैसे सोमा के शरीर के अन्दर दौड़ते हुए गर्म, जवान खून में घुल-मिल कर, सौन्दर्य को और ज्यादा आकर्षक रूप दे दिया था। और मनुष्य स्वाभाविकतः उसी रूप को पूजता है—उसे उसी रूप की पूजा करनी भी चाहिए जो उसे शरीर की मांसलता भी में मिले, जिसका एहसास उसकी इन्द्रियाँ कर सकें। जब तक इन्सान ज़िन्दा है तब तक उसके शरीर का उतना ही महत्त्व है जितना उसकी आत्मा का; शरीर की पुकार, उसकी ज़रूरतें शर्म की बातें नहीं हैं—उन पर इन्सान को ध्यान देना होगा। सभ्यता ने यह भी सिखाया है कि शरीर की वासना को पूरा करना पाप है और उसका फल यह हुआ है कि अगर वह शरीर की पुकार को दबा नहीं पाता है तो वह गुमराह होकर अपने ही डर और वहम के नरक में छटपटाता रहता है। उसकी स्वतन्त्रता और विकास

का अन्त हो जाता है और अगर वह उस पुकार को दबा लेता है तो झूठी नैतिकता की माला जपने वाला वह झूठ बोलता है—अपने से धोखा करता है और उसके शरीर की गहरी तहों के अन्दर गन्दी हविस का नासूर हमेशा रिसता रहता है। सौन्दर्य शरीर की नश्वरता में नहीं है बल्कि उस शाश्वत शक्ति में है जिससे वह बार-बार मर कर जन्म लेता है—जिससे बार-बार बसन्त आता है और नए फूल और कलियाँ उभर आती हैं। और इसीलिए राजीव को सोमा में सौन्दर्य का आदर्श दिखाई देता था। इसीलिए वह इन दिनों सोमा का चित्र बना रहा था।

शमशेर ने एक दिन ऐसे ही बातों-बातों में पूछा—"राजीव! आजकल कोई नया चित्र बना रहे हो?"

"हाँ दादा! अपना सबसे सफल—सबसे महान चित्र!"

"चित्र का विषय क्या है?"

"सौन्दर्य की देवी!"

"कौन है वह सौन्दर्य की देवी?"

"चित्र बनने पर दिखाऊँगा!"

और कुछ दिनों बाद वादे के मुताबिक़ राजीव एक ढँका हुआ चित्र लेकर शमशेर को दिखाने पहुँचा। उसने चित्र को मेज़ पर रख कर ऊपर से कपड़ा खींच लिया। आश्चर्य में शमशेर के मुँह से आवाज़ निकलने को हुई लेकिन उसने इसे रोक लिया। "सोमा!"

"दादा—कैसा लगा आपको चित्र!"

"बहुत अच्छा!" शमशेर हिचक कर बोला। कुछ देर और राजीव बैठा और जब उठने लगा तो वह चित्र को लपेट कर फिर से उठाने लगा। शमशेर उस चित्र के सामने से चले जाने के ख़्याल से ही तिलमिला पड़ा।

"राजीव! इस चित्र को मुझे दे दो—चाहे जिस क़ीमत पर!"

"पर दादा!" राजीव को आश्चर्य हुआ, "यह मेरी सबसे प्यारी

कृति है—यह मेरी साधना का सबसे पवित्र फल है...."

"जितनी क़ीमत चाहो ले लो—राजीव !"

"क़ीमत का सवाल नहीं दादा—ऐसा असम्भव है !"

राजीव चित्र उठा कर चलने लगा—शमशेर के मुँह से एक आह निकल पड़ी—उस आह में ज़बरदस्त पीड़ा थी। राजीव के क़दम रुक गए—शमशेर के जीवन में कोई सुख नहीं है। अगर उसका यह चित्र उसे सुखी बना सकता है तो क्या उसे उस सुख से वंचित रखना अन्याय नहीं है—ऐसी कला से क्या लाभ जो दूसरों को सुख न पहुँचा सके—उनके ज़ख़्मों को सहला न सके। राजीव ने वह चित्र कमरे में ही छोड़ दिया और तेज़ी से बाहर चला गया।

शाम को सोमा बोली—"मेरी तस्वीर दिखाओ !"

"वह...वह मैंने किसी को दे दी !"

"क्यों। मेरी तस्वीर तुमने क्यों दी किसी को !" सोमा ने रूठते हुए कहा।

अफ़सोस तो राजीव को भी बेहद था मगर उसने हँसते हुए जवाब दिया—"अरे उस नक़ली तस्वीर का क्या करते—वह तस्वीर तुमसे अच्छी तो थी नहीं। और मेरे पास तो तुम हो !" और उसने सोमा के बालों को चूम लिया।

"अच्छा तुमने तस्वीर दी किसे ?"

"शमशेर बाबू को !"

"क्यों ! वह क्या करेंगे मेरी तस्वीर का !"

"उन्हें अच्छी लगी—बहुत !"

"तो वह उनसे ले लो !"

"नहीं सोमा रानी ! जिस चीज़ से किसी को सुख मिले वह उससे कभी नहीं छीननी चाहिए—पाप होता है। हमें तो चाहिए हम हमेशा औरों को सुख पहुँचाते रहें—यही ज़िन्दगी का, कला का, प्यार का आदर्श है ! हो सकता है कभी इसमें हमें तकलीफ़ सहनी पड़े पर वह

कष्ट इससे अच्छा है कि स्वार्थ के लिए हम दूसरों को दुखी करें !"
सोमा की समझ में कुछ भी नहीं आया।

*   *   *

पहाड़ों के पीछे साँझ डूब गई और रात निकल आई और आसमान की स्याह चादर को फाड़ कर करोड़ों सितारे उभर आए। दूर वादी के बीचोंबीच में एक बड़ी आग जल उठी और नगाड़ों की आवाज़ रात की निःस्तब्धता में गूँज गई। वहाँ युवतियों की पायल छमक उठी थी प्यार के सुरों पर और आसमान में चाँद की वंशी की धुन पर सितारों के महलों में बसने वाली असंख्य रुपहली परियों के घुँघरू झंकार उठे थे। सारे माहोल में जवानी थी, प्यार था, ख़ुशियाँ थीं।

मेज़ पर सोमा का वह अद्भुत चित्र खड़ा था और शमशेर उसके सामने बैठा था—वह बहुत ख़ुश था। चित्र में से झाँकती हुई वह आँखें जिन्होंने उसे पागल बना दिया था, इतना बदल दिया था, उसकी तरफ़ बराबर उसी तरह से देख रही थीं। उस दिन वाली घटना के बाद सोमा ने फिर कभी उसकी तरफ़ नहीं देखा था, वह उससे हमेशा आँख बचा लेती थी। बस उस पहली नज़र का जादू ही उसके पास एक खूब-सूरत याद बन कर रह गयी थी और शमशेर को वह याद तड़पाया करती थी—लगातार, बराबर। उसके शरीर के रोम-रोम की सोई हुई इच्छाएँ उत्तेजना का एक गरजता हुआ तूफ़ान बन गई थीं जिन्होंने शमशेर के जिस्म की हर रग को झकझोर डाला था; असन्तुष्ट उत्ते-जना ने उसके शरीर में एक दर्द सा पैदाकर दिया था और उसने अपने ऊपर क़ाबू सिर्फ़ इसीलिए कर रखा था कि उसे विश्वास था कि आगे-पीछे वह सोमा के प्यार को पा जायगा। और आज यह चित्र उसके सामने रखा था और उसमें से दो प्यार भरी मगर मासूम आँखें झाँक रहीं थी। एक ओर तो उसे ख़ुशी थी—सन्तोष था और दूसरी ओर उन आँखों ने उसके अन्दर उत्तेजना को और उतावला बना दिया

था। उसकी पिछली ज़िन्दगी, उस पर हुए अत्याचार, उसका विद्रोह, उसकी नफ़रत सब इस नए प्यार और इच्छा में डूब गए थे; उसके तमाम पिछले दिन जैसे भूल दिये गए, अब सिर्फ़ सोमा और उसका प्यार —यही दो उसके जीवन में रह गए थे। इसके साथ-साथ उसके अंदर हज़ारों आशाएँ—हज़ारों उमंगें जाग उठी थीं। शमशेर जो संघर्षों की जलती हुई घाटियों में चला था, जिसने विद्रोह किया था, जिसे समाज ने सताया था, वह ऐसे सपने नहीं देख सकता था—ऐसी आशाएँ दिल में नहीं बसा सकता था; जो शमशेर प्यार का वह नया और रंगीन ख़्वाब देख रहा था वह तो एक नादान नौजवान था जिसका सम्बन्ध दुनिया और उसकी वास्तविकताओं से था ही नहीं। शमशेर का यह नया व्यक्तित्व उसकी वह उमंग भरी जवानी थी जो उसके जीवन में परिस्थितियों और संघर्षों के कारण आ ही नहीं सकी थी। जवानी के उन दिनों का जीवन की कटुता से या उसकी परेशानियों से कोई नाता नहीं होता। उस जवानी में तो दिन सोने के होते हैं और रातें चाँदी की, चन्दन के महलों में परियाँ नृत्य किया करती हैं, उमंगे और क़हक़हे होते हैं और बेशुमार सपनें एक सतरंगी समन्दर में हर वक़्त तैरा करते हैं। वह ज़माना शमशेर की ज़िन्दगी में तब नहीं आया था क्योंकि परिस्थितियों के क्रूर हाथों ने उसे बचपन से ही घसीट कर एकदम संघर्षों के बीचोंबीच में लाकर पटक दिया था और उसके जीवन में सपने तूफ़ान और आँसू और ज़ख़्म और आँहें बन कर आए थे। लेकिन आज बरसों के बाद भूली हुई जवानी को सोमा की मासूम आँखों ने फिर से जगा दिया था।

शमशेर सपने देख रहा था कि उसके बन्द कमरे में किसी की सुन-हरी हँसी की मधुर लहरें घुस आईं। शमशेर ने अपने सपनों से जाग कर वह मीठी हँसी की आवाज़ सुनी। उसे बहुत आश्चर्य हुआ—उसने आज तक ऐसी खूबसूरत हँसी कभी नहीं सुनी थी—लगता था जैसे चाँदी के हज़ारों घुँघरू एक साथ झंकार कर उठे हों। उस हँसी ने

उसके सपनों को गुदगुदा दिया। लेकिन किसकी है यह हँसी ? उसके घर के पास कौन हँस रहा है ? वह बड़े प्रयत्न से अपनी कुर्सी से उठा और खिड़की तक गया। उन पर पड़े हुए पर्दे उसके यहाँ आने से अब तक नहीं उठाए गए थे और उन पर धूल जम गई थी। शमशेर ने उन्हें एक तरफ़ को हटाया। खिड़की के शीशों को चीरती हुई चाँदनी एकदम अन्दर घुस आई। शमशेर की आँखें हँसने वाले को तलाश कर रही थीं—

ऊपर की सलाख से टूट कर पर्दा शमशेर की भिंची हुई मुट्ठियों में आ गया। बाहर चाँद की ठंडी किरनों के साए में राजीव एक पत्थर पर बैठा था और उसकी गोद में सिर डाले सोमा लेटी थी। राजीव उसे छेड़ रहा था और सोमा खिलखिलाए जा रही थी। शमशेर को चक्कर आ गया—वह लड़खड़ा कर गिर पड़ा। अन्धकार ! वह चिराग़ जो शमशेर को अपने जीवन के गहरे अन्धेरे में दिखाई पड़ा था, न जाने वह कहाँ ग़ायब हो गया। वह अन्धकार दूना—चौगुना गहरा हो गया, वह जवानी जो भूले से आ गई थी लड़खड़ा कर गिर पड़ी—मर गई, वह सपने रात की तारीकियों में पिघल कर ओझल हो गए, वह फूल जो अभी मुस्करा रहे थे, मुरझाकर धूल में मिल गए। शमशेर के अन्दर जो कुछ उभरा था टूट गया।

सुबह सूरज की पहली किरन उस फटे हुए पर्दे में से कमरे के भीतर आ गई। शमशेर मेज़ का सहारा लेता हुआ उठा और कुर्सी पर बैठ गया। रात के अँधियारे में उस पर ग़म की कितनी गहरी चोट लगी थी, यह कभी किसी को न मालूम हो सकेगा लेकिन इतना ज़रूर था कि जब ज़ख्म पर दोबारा चोट लगती है तो दर्द सबसे ज़्यादा होता है। नियत समय पर सोमा नाश्ता लेकर कमरे में आई—कमरे में रौशनी देख कर उसे आश्चर्य हुआ और उसकी निगाह फटे हुए पर्दे पर गई, फिर शमशेर के मुँह पर और फिर अचानक अपनी तस्वीर पर और वह न जाने क्यों ज़रा पीछे हटी। शमशेर एक दम अपनी कुर्सी से उठा

और उसने सोमा को अपनी बाहों में कस लिया—सोमा पल भर को हकबका गई लेकिन फिर ताक़त से अपने आपको शमशेर के आलिंगन से छुड़ा कर भागी—"नहीं—कभी नहीं!" वह बाहें जिनमें सोमा के नर्म और जवान शरीर को बाँध लेने का मतवालापन था, कमरे की घुटन में तड़पते हुए रह गईं। शमशेर की सारी उत्तेजना पर जैसे बर्फ़ के पहाड़ टूट पड़े। सोमा को राजीव की बाँहों में देख कर शमशेर के अन्दर आग के तूफ़ान जाग पड़े थे और उसने शमशेर के प्यार में लपटें उठा दी थीं—क्रोध और प्रतिहिंसा की—और यह निश्चय कि वह सोमा के शरीर पर अधिकार पाकर ही रहेगा! क्रोध और प्रतिहिंसा तो पहले भी शमशेर में थीं लेकिन उसे किसी व्यक्ति विशेष से बैर नहीं था—शिकायत नहीं थी। उसे तो एक व्यवस्था से—उस माहोल और निज़ाम से एक ऐसी नफ़रत थी जिसे संघर्षों और अत्याचारों ने पैदा किया था। और जब विद्रोह, क्रोध और नफ़रत आदर्शों के बजाय छोटे-छोटे स्वार्थों के लिए होते हैं तो व्यक्ति गिर जाता है और पतन में वह वही करता है जिसे नीचता और अन्याय कहा जाता है। शमशेर स्वयं उन्हीं बातों से कल तक नफ़रत करता था जिन्हें वह आज करने पर आमादा हो रहा था।

* * *

सोमा भागते-भागते राजीव के पास गई और राजीव के सीने पर सिर टेक कर रो पड़ी। राजीव को ताज्जुब हुआ।

"सोमा क्या हुआ? यह आँसू क्यों?"

आँसुओं ने आवाज़ को गले में ही रोक लिया।

"इन आँखों में सिर्फ़ ज़िन्दगी और मुस्कराहटें ही होनी चाहिए थीं—इनमें आँसू कैसे आए सोमा?"

सोमा ने राजीव को रुक-रुककर बताया कि उसके साथ क्या हुआ था। राजीव को सब याद आ गया कि कैसे शमशेर सोमा की

तस्वीर पा लेने के लिए अधीर हो गया था। राजीव खड़ा होकर सोचने लगा। सोमा राजीव के गले में हाथ डाल कर बोली—"चलो कहीं भाग चलें राजीव—मुझे यहाँ से कहीं दूर ले चलो।"

"नहीं सोमा! नहीं!"

"यहाँ मैं नहीं रहना चाहती—राजीव! यहाँ पर उसके हाथ फिर से मुझे अपवित्र करने की कोशिश करेंगे और जो कुछ तुम्हारा है उसे मैं किसी को नहीं दे सकती।"

राजीव का प्यार जैसे अन्दर ही अन्दर सिसक पड़ा और उसने एक आह के साथ सोमा को अपने बिल्कुल क़रीब खींच लिया—एक नाज़ुक बेल की तरह सोमा राजीव के जवान शरीर से चिपक गई।

"सोमा—तुम शमशेर के पास जाओ!"

"राजीव!"

"हाँ सोमा!"

"राजीव! तो तुम मुझे प्यार नहीं करते! शमशेर के पास जाने के पहले मैं अपनी जान दे दूँगी—तुम्हारे बिना मैं ज़िन्दा नहीं रह सकती।"

"मैं तुम्हें उतना प्यार करता हूँ सोमा जिससे ज़्यादा प्यार किया ही नहीं जा सकता। लेकिन मैं तुम्हारी आत्मा को प्यार करता हूँ और तुम्हारी आत्मा को मुझसे मौत भी जुदा नहीं कर सकती। आत्मा शरीर से ऊँची होती है। शरीर की तरह शरीर का प्यार भी नश्वर है पर आत्मा अमर है और उसका प्यार भी अमर है।"

"नहीं—राजीव—कभी नहीं!" सोमा फूट-फूट कर रो रही थी।

"हाँ—सोमा—हाँ! शमशेर को जीवन में कभी सुख नहीं मिला है; दुनिया ने—समाज ने उसके साथ घोर अत्याचार किया है, उसके हर अरमान का गला घोटा है—उसकी हर उमंग को पामाल किया है—उससे उसका सब कुछ छीन लिया है और उसे सिर्फ़ दर्द और ग़म और आँसू दिए हैं। और फिर मैं तो तुम्हारी आत्मा पा चुका हूँ और

शरीर का वियोग तो मेरे प्रेम को और पवित्र कर देगा। तुम्हारे लिए मेरा प्यार हमेशा अमर रहेगा !'

सोमा ज़ोर से रो पड़ी—"शमशेर को सुख नहीं मिला तो इसकी जिम्मेदारी हमारी तो नहीं। तुम देवता हो राजीव पर मेरे सुख का तो बलिदान मत करो !"

सोमा के बालों पर हाथ फेरते हुए राजीव बोला—"धीरज धरो—सोमा !" एक आदमी राजीव के घर आया—"शमशेर बाबू ने आपको फ़ौरन बुलाया है !" सोमा बोल पड़ी—"राजीव—मत जाओ ! मुझे डर लगता है !" और राजीव सोमा को बैठाल कर शमशेर से मिलने के लिए चला गया।

* * *

"कहिए कैसे याद किया—इतनी सुबह ?"

"एक सवाल पूछने के लिए !"

"कि मैं सोमा को प्यार करता हूँ ? हाँ ! करता हूँ और करता रहूँगा। और यह भी जानता हूँ कि आप भी सोमा को प्यार करते हैं। शायद इसी के फ़ैसले के लिए आपने मुझे बुलाया है !"

"होशियार आदमी मालूम पड़ते हो—तुमने ठीक सोचा !"

"तो फ़ैसला तो मैं कर चुका ! आप इतने अधीर न हों—फैसला आपके हक़ में है ! सोमा के शरीर की आपको ज़रूरत है—मेरी तरफ़ से आप उसे ले सकते हैं...."

शमशेर ने ज़ोर से घूँसा मेज़ पर मारा—"मैं भीख माँगने का आदी नहीं हूँ—राजीव ! जो कुछ मैं चाहता हूँ उसे बल से जीत कर लेता हूँ।"

"मैं भीख नहीं दे रहा हूँ आपको। मुझे तो सोमा की ख़ूबसूरत

आत्मा चाहिए और वह मेरे पास है और उसे आप या और कोई कभी नहीं ले सकता !"

"मैं कुछ नहीं जानता ! हम लोगों में से केवल एक ही ज़िन्दा रह सकता है सोमा से प्यार करने के लिए। इसका फ़ैसला बातों से नहीं होगा राजीव—ख़ून से होगा...."

एक चीख़ के साथ सोमा कमरे में घुस आई और राजीव के सामने खड़ी हो गई। राजीव ने सोमा से कहा, "सोमा यहाँ से जाओ—हट जाओ !"

सोमा ने राजीव को और कस के पकड़ लिया—"नहीं—राजीव—नहीं !"

शमशेर बोला—"उठा लो पिस्तौल ! फ़ैसला कर लें !"

"ख़ून बहाने की आदत मुझे नहीं है; तुम उठाओ अपना रिवाल्वर और मन की मुराद पूरी कर लो लेकिन ख़ून बहाकर भी तुम्हें सोमा की आत्मा न मिल पाएगी—कभी नहीं मिल पाएगी !"

दाँत पीसते हुए शमशेर ने पिस्तौल उठा ली। "सोमा—राजीव के सामने से हट जाओ !"

"नहीं—कभी नहीं !"

पिस्तौल की नली उठ कर सीधी तन गई और उँगलियाँ 'ट्रिगर' पर धीरे-धीरे कसने लगीं। शमशेर की जलती हुई आँख सोमा की आँखों से मिली। 'ट्रिगर' पर कसी हुई उँगली ढीली पड़ गई—जिस हाथ में पिस्तौल थी वह हिल गया। सोमा की आँखों में आँसू थे और उन आँसुओं के पीछे नफ़रत—क्रोध—दुख थे सोमा की आँखों में। और जहाँ राजीव और सोमा खड़े थे उसके पीछे सोमा का चित्र रखा था जिसमें से झाँकती हुई आँखों में प्यार और सौन्दर्य और मुस्कराहटें चमक रही थीं। और उसे याद आया वह वक़्त जब सोमा ने पहली बार उसकी तरफ़ देखा था। उन आँखों में कितनी मासूमियत थी—रूप था

और जो आँखें वह अब देख रहा था उनमें प्यार का अमृत नहीं था—सौन्दर्य की चमक नहीं थी—आशाओं के जगमगाते हुए चिराग़ नहीं थे; उन आँखों में सिर्फ़ दुख था—क्रोध था—घृणा थी। वह आँखें बदल चुकी थीं; शमशेर के दिल में प्यार तो उन पहले की आँखों ने पैदा किया था—उसके उजड़े हुए वीरानों में वही बहारें लाई थीं। यह आँखें क्यों बदलीं ? क्यों ? क्यों ? प्रश्न चीख़ता रहा शमशेर के दिमाग़ में—फिर जैसे अन्दर से आवाज़ आई—

"इन आँखों को तुमने बदला है—तुमने ख़ून किया है इस रूप का—जवानी का—इन उमंगों का—इस मासूमियत का। तुम पागल हो—पागल—बिल्कुल पागल ! तुमने सारे समाज को हमेशा नफ़रत की और अब तुम ख़ुद नफ़रत किए जाने क़ाबिल हो गए हो। तुम उन्हीं मुस्कराहटों का ख़ून करना चाहते हो जो तुम्हें फिर से जीवन दे सकती हैं ! तुम इतने पतित हो चुके हो कि तुमने मासूम सोमा के अन्दर भी घृणा पैदा कर दी—तुमने फूल से उसकी ख़ुशबू छीन कर उसमें ज़हर भर दिया। मरना तुम्हें चाहिए—राजीव को नहीं—सोमा राजीव को प्यार करती है—राजीव और सोमा एक दूसरे को प्यार करते हैं—वह भविष्य की आशाएँ हैं—वह चिराग़ है जो कल के अँधेरे को दूर करेंगे—वह एक नयी दुनिया का निर्माण करेंगे। और तुम उनकी—भविष्य की आशाओं को रौंद डालना चाहते हो, उस चिराग को फूक मार कर बुझा डालना चाहते हो जिससे दुनिया में रौशनी फैलेगी—तुम नयी दुनिया के ख्वाबों का ख़ून करना चाहते हो—तुम नीच हो—स्वार्थी हो—पागल हो !"

और वह आवाज़ ज़ोर से ठहाका मार कर हँस पड़ी—शमशेर के माथे पर पसीने की बड़ी-बड़ी बूँदें उभर आईं।

"बाहर निकल जाओ—जाओ—निकल जाओ !" शमशेर ने राजीव और सोमा को बाहर निकाल दिया। दोनों चकित थे, लेकिन

शमशेर की आवाज़ में सख्ती थी—पागलपन था। सोमा और राजीव कमरे के बाहर चले गए।

शमशेर लड़खड़ाता हुआ सोमा के चित्र के पास तक गया और उसने उन दो आँखों को चूम लिया और पिस्तौल उठा कर अपनी कनपटी पर रख कर चला दी। आवाज़ हुई और राजीव और सोमा भागे-भागे कमरे में आए—सोमा के चित्र के नीचे शमशेर की लाश पड़ी थी—मौत की गोद में क्या उसे शांति मिली होगी जिसे ज़िन्दगी ने हमेशा सताया था? कौन जाने?

[मार्च १९५३]